

April to June 2009
Year 6th : Issue 2nd

अप्रैल से जून - 2009
वर्ष छः : अंक द्वितीय



GYAN PRABHA
(Quarterly)
ज्ञान प्रभा
(त्रैमासिक) 13

प्रबन्ध सम्पादक
सुरेश चन्द्र

Managing Editor
Suresh Chandra

मूल्य : 30/ रुपये

वार्षिक मूल्य 100/- रुपये

भारत विकास परिषद् प्रकाशन

इस अंक में

| | | |
|---|----------------------------|----|
| 1. अपनी बात | | 1 |
| 2. Editor's Reflections | | 3 |
| 3. वेदामृत | ओंकार सिंह त्यागी | 5 |
| 4. Empowerment of Women | Suresh Chandra | 6 |
| 5. नवदुर्गा और नारी शक्ति | जगदीश जोशी | 9 |
| 6. औरत को समझने के लिए जन्म लेना होगा औरत का | वन्दना मिश्रा | 13 |
| 7. स्त्री मुक्ति के भौतिक उपकरण | कमल किशोर | 18 |
| 8. नारी मुक्ति या नारी सशक्तिकरण | किशोर अग्रवाल | 23 |
| 9. पर्यावरण रक्षा में नारी का योगदान | प्रतिभा आर्य | 27 |
| 10. जब स्त्रियों ने इतिहास रचा | राजेन्द्र कुमार | 31 |
| 11. मेरी अध्यात्म यात्रा | स्व. लक्ष्मीमल सिंघवी | 34 |
| 12. Women Empowerment Through Self Help Groups | Prof. Arjun Y. Pangannovar | 36 |
| 13. उदात्त उद्बोधन | डा. धर्मवीर सेठी | 38 |
| 14. धरती लोकतन्त्र | वन्दना शिवा | 40 |
| 15. चिन्ताओं से डर कैसा | डा. प्रणव पाण्डया | 43 |
| 16. कर्मयोग प्रधान जीवन | डा. ऊषा खोसला | 45 |
| 17. भारत में परमाणु सूर्योदय | आर. के. श्रीवास्तव | 47 |
| 18. लक्ष्य प्राप्ति के लिए विरोधी भावों को त्यागें | सीताराम गुप्त | 51 |

| | | |
|--|--------------------------|----|
| 19. संस्कृति बोध - भेद और अभेद | प्रमोद कुमार दुबे | 54 |
| 20. इंग्लैंड में अंग्रेजी की संघर्ष गाथा | दया प्रकाश सिन्हा | 57 |
| 21. पश्चिम में समाचार पत्रों की गिरती हुई संख्या | शचीन्द्र चन्द्र गोयल | 60 |
| 22. खरीदा कौड़ियों के मोल | संकलित | 62 |
| 23. Stem Cell -A New Wonder Therapy | O.P. Saxena | 64 |
| 24. Development of Villages Through N.G.O's | S.R. Maan | 68 |
| 25. A Father's Letter to His Son's Teacher | Abraham Lincoln | 71 |
| 26. I have three visions for India | Dr. A.P.J. Abdul Kalam | 72 |
| 27. Private Prisons in the U.S. (Global Research) | Vicky Pelaez | 74 |
| 28. Corruption in Drug Industry | Compiled | 79 |
| 29. Rational Use of Drugs | Col. (Dr.) B.R. Pareethi | 79 |
| 30. The Path of the Pilgrim | Dr. Kiran Kumar | 81 |
| 31. पत्र जगत | | 84 |

पुरुषों के हाथों में असीमित अधिकार नहीं दिये जाने चाहिए। ऐसे अधिकार पाकर वे अत्याचारी शासक बन बैठेंगे। हम महिलाएँ उन कानूनों को कभी नहीं मानेंगी। जिनके बनाने में हमारा प्रतिनिधित्व न हो एवं मत न लिया गया हो। सन् 1776 में अमेरिकी राष्ट्रपति जान एडम्स को एक महिला द्वारा लिखे गये पत्र का एक अंश ।

लेखक के सामाजिक सरोकार

अ प नी बा त

अन्य कलाओं जैसे पेंटिंग, संगीत, नृत्य इत्यादि की तरह लेखन भी एक कला है। कला के लिए प्रायः ही स्वान्तः सुखाय रचना या Art for Art's sake की दुहाई दी जाती है। किन्तु क्या कोई भी कला अपने परिवेश एवं सामाजिक परिस्थितियों से कट कर जीवित रह सकती है? कला के लिए कला केवल इस अर्थ में स्वीकार की जा सकती है कि कलाकार स्वतः प्रेरणा से या अन्तरात्मा की पुकार से कला सृजन करे किसी व्यापारिक या आर्थिक उद्देश्य से नहीं।

लेखक सृष्टि का एक अत्यंत चैतन्य एवं संवेदनशील प्राणी होता है। वह जीवन एवं समाज से जुड़ा होता है। साथ ही वह जीवन के सत्य एवं उसके मूल्यों की खोज भी करता है। जहाँ वह तात्कालिक एवं ज्वलंत प्रश्नों एवं समस्याओं के उत्तर एवं हल ढूँढता है वहाँ वह दूर - दृष्टा भी है एवं राष्ट्र तथा विश्व के लिए कल्याणकारी मंत्रों का सृजन भी उसी की लेखनी से होता है।

देश में वर्तमान समय की सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि समाज में न्याय व्यवस्था, अर्थ व्यवस्था एवं धर्म तथा संस्कृति पर भी राजनीति हावी हो गई है। अभी लोक सभा के चुनावों का महाकुम्भ सम्पन्न हुआ है एवं पिछले माह में ऐसा लगता था कि राष्ट्र के जीवन में राजनीति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया है। मीडिया का प्रत्येक अंग-अखबार, पत्रिकाएँ, रेडियो, टेलिविजन सब पर राजनीतिज्ञों के क्रिया-कलाप, भाषण, बयान-बाजी के अतिरिक्त कुछ दिखाई पड़ना कठिन था। लेखक को राजनीतिक हल-चल का जागरूक दृष्टा अवश्य होना चाहिए किन्तु लेखक वर्ग राजनीति से पृथक ही रहे तो श्रेयस्कर है।

महिला सशक्तिकरण - आई० ए० एस० टॉपर महिलाएँ

ज्ञान प्रभा का यह अंक महिला सशक्तिकरण एवं नारी मुक्ति को समर्पित है। महिला सशक्तिकरण के कई पहलु हैं। क्या नारी मुक्ति एवं उसका सशक्तिकरण एक ही है? मुक्ति से हम क्या समझते हैं? उसका शिक्षित होना, आर्थिक रूप से स्वावलंबी होना एवं स्वयं निर्णय लेने में सक्षम होना ये सब नारी मुक्ति एवं नारी सशक्तिकरण के ही अंग हैं।

यहाँ पश्चिमीकरण का प्रश्न भी उठ खड़ा होता है। वहाँ नारी मुक्ति के नाम पर उच्छ्रंखलता को बढ़ावा मिला है। मुक्ति एवं सशक्तिकरण इस सीमा तक पहुँच गया है कि पारिवारिक व्यवस्था को ही खतरा पैदा हो गया है। क्या भारत को भी उसी राह पर चलना चाहिये जहाँ से वह समाज वापस आना चाहता है?

स्त्री की दृढ़ इच्छा शक्ति भी उसकी मुक्ति का एक सोपान है। किन्तु यदि भौतिक परिस्थितियाँ ऐसी हों कि उसके अपने मुक्ति के विषय में सोचने की शक्ति ही शेष न रह जाये तो केवल इच्छा शक्ति कहाँ तक काम करेगी। अतः दिन-रात मशीन की भाँति काम में खटनेवाली स्त्री को इन परिस्थितियों से भी छुटकारा दिलाना होगा।

एक महत्वपूर्ण समाचार यह भी है कि वर्ष 2008 के आई0 ए0 एस0 परीक्षा के जो अंतिम परिणाम घोषित हुए हैं उनमें तीन शीर्ष स्थान महिलाओं ने प्राप्त किये हैं। यही नहीं 25 प्रथम सफल उम्मीदवारों में से 10 लड़कियाँ हैं। इस परीक्षा में कुल 791 उम्मीदवार सफल हुए हैं जिनमें से 166 महिलाएँ हैं।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में यह एक सार्थक कदम है। महिलाएँ हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही हैं। आई0 टी0, मैनेजमेंट, व्यापार, उद्योग, राजनीति इत्यादि कोई भी क्षेत्र उनसे अछूता नहीं है। महिलाओं के लिए आने वाले नये युग का यह संभवतः प्रथम सोपान है।

किन्तु जब हम उनकी सफलताओं की बात करते हैं तो एक कटु सत्य को भूल जाते हैं। ये सफलताएँ महिलाओं के एक विशेष वर्ग तक ही सीमित हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 50 प्रतिशत से भी अधिक महिलाएँ अभी अशिक्षित हैं। देश के अनेक भागों में नारी मुक्ति एवं नारी सशक्तिकरण जैसे शब्द उनके लिये अनजाने हैं।

देश के लिए वह शुभ दिन होगा जब इस देश की प्रत्येक महिला न केवल इन शब्दों का अर्थ समझ सकेंगी अपितु सशक्त एवं मुक्त होकर खुली हवा में सांस भी ले सकेंगी।

Bharat Vikas Parishad

A Complete NGO

Non-Government Organizations are usually divided into three categories or generations. The word generation is used because many NGOs start working in the first category and then develop into the second and third categories.

First generation NGOs directly deliver the services to meet an immediate deficiency or shortage experienced by its beneficiary population such as the needs for food, health care or shelter. During an emergency such as flood, an earthquake or a war such assistance is urgently required and is delivered according to the funds and staff available with the NGO.

In this category the NGO is the doer while the beneficiary is passive. The relief efforts remain tied to the needs of the people in distress. It is an adhoc relief and usually no further effect or development is involved. Sometimes the NGOs are formed for this very purpose and are dissolved when the emergency is over.

Second generation NGOs focus their energies on development. This development is of two kinds-first the development of health and educational facilities and strengthening the infrastructure. In villages they introduce improved agriculture practices, impart employment oriented training etc. Mostly they do it with their own resources but with the active help of the village committees, self-help groups etc. Secondly they help in developing the capacities of the people to meet their own needs through self-reliant local action.

In this type NGO work there is a partnership between the NGO and the community. The latter is expected to contribute to both decision making and implementation. The rallying cry of this type of work is the ancient proverb, "give a man a fish and you feed him for a day, teach him to fish and you feed him for life time." But there is a flaw in the second generation NGO work as well. They do very good work in providing services and also help in developing the potential of the local population making them self-reliant. But their action is confined to local communities, a

few towns and small territories. They are unable to work at national or global levels.

The third generations NGOs combine the working strategies of both second and third generation NGOs but they work perpetually and are not constrained by a particular territory. They come forward to help in emergencies like floods, earthquakes, famines etc. They also set-up excellent local units to provide help in medical, educational, environmental fields etc.

Going beyond the above two functions They perform a catalytic and foundation like roles along with the role of an operational service provider. The underlying theory of the working of third generation NGOs is grounded in an assumption that a centralized control of resources, prevent essential services from reaching the poor and lead to corruption, delay and exploitation. Moreover, these NGOs try to change the thinking of the people and bring a silent revolution.

Bharat Vikas Parishad is a third generation NGO and much more. It was born out of a first generation NGO, the Citizens Forum, which was formed to assist the 1962 war efforts. It converted itself in the second generation NGO after the war. For four years it was confined to Delhi only. Now that small plant has expanded to become a huge banyan tree. Its branches give local help at the time of disasters like floods, earthquakes, tsunami, super cyclones etc. It is also running excellent institutions like Hospitals, Viklang Kendras, Diagnostic Centers etc. it is also bringing mental revolution by imbuing the national spirit and giving Sanskaras to the youth, families and senior citizens. Its branches have spread in almost all the corners of the country. The planning, raising the funds and implementing the projects is done by the branches but under supervision of the centre.

It has spread its wings to the foreign shores also and is on the way of becoming a global entity.

One who wants to please everybody cannot lead.

वेदामृत

जनं विश्वती बहुधा विवाचसं नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्रं धारा द्रविणस्य मे दुहयं ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरूती॥

(अथर्ववेद 12.1.45)

भावार्थ :- विविध प्रकार की भाषाओं को बोलने वाले तथा विविध धर्मों को मानने वाले जनसमुदाय को एक घर के समान धारण करती हुई यह पृथ्वी बिना हिले डुले स्थिर खड़ी गाय के समान मेरे लिये धन-धान्य की हजारों धाराएँ दुहे अर्थात् प्रदान करे।

The earth sustains human beings speaking different languages and following different religions. It is like a cow which is standing still. May it provide me with wealth as the cow gives milk.

अथर्ववेद के उपरलिखित मन्त्र से हमें यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए कि विश्व में अथवा किसी देश विशेष में अलग-अलग धर्म तथा अलग-अलग भाषा होने पर भी एक परिवार की तरह परस्पर मिलकर प्रेमपूर्वक रहना चाहिए, तभी यह देश अथवा विश्व धन-धान्य से पूर्ण समृद्ध हो सकेगा।

इस वेद मन्त्र से पर्यावरण का भी सुन्दर संदेश मिलता है। यहाँ पर पृथ्वी की उपमा गाय से दी गई है। गोदोहन के समान ही हमें पृथ्वी के संसाधनों का मानवता के हित में सदुपयोग करना चाहिए।

The creator of this mantra says that all the people speaking different languages and following different religions should live peacefully on this earth. This earth is like a cow who feeds all of us.

The mantra also indicated that the resources of this earth should be used with prudence so that like a cow the earth can produce them continuously and sustain us forever.

ओमकार सिंह त्यागी

Empowerment of Women

Suresh Chandra

First of all let us be clear on one point: what do we mean exactly by empowerment of women. Does it mean that they should be enabled to do every type of work, from driving a locomotive to joining the combat duty at war front? The other view may be that they should be allowed to ape the West freely with all of its vices like divorce, live-in arrangements even though unmarried, dating, etc. Some others may opine that in ancient India women were worshipped; they were Durga, Parvati and Laxmi and were the foundation of the social and cultural life of the family. So, should we revert to that age to empower women?

In pre-agriculture period, women worked hard and even participated in warfare. But the pregnancy and childbirth reduced their capacity to work and made them more and more dependent on men for food and protection. With time nomads settled down and community life originated. The hunters and food-gatherers became agriculturists and for that also *man power* was required. The community desired a continued existence beyond the present and institutions like property, inheritance etc. appeared. Women became epitome of procreation and were respected and even feared.

But with the advent of an agrarian society a feudal and patriarchal system was also not far away. In that system the woman was looked upon as a property to be used as her owner, the man, wished. The patriarch became all powerful, dominating almost every sphere of life. Woman was made a goddess but was given little rights in actual practice. Some religious ideologies also strengthened this trend. Woman was confined to the privacy of the home having almost no touch with the outside world.

As regards India, thousands of years of foreign invasion and slavery played havoc with every sphere of life, which included the status of women in the society as well. Due to insecurity they were confined within the four walls of the house. Their education suffered and they

were married off at an early age to keep them safe from the prying eyes of the invaders. Under feudalistic system woman was treated as a property with no rights of her own and almost no say in domestic or other affairs. After independence efforts has been made to ameliorate her position but so far a very small section of women has benefitted from these.

The Indian Constitution gives equal rights to women and laws have been made to give them protection against domestic violence, rights in property, reservation in some elected bodies and educational institutions but so far the results have not been very satisfactory. The true empowerment of women lies in the fact that that they should be able to take a decisive part in social, political and economical life of the country.

So, let us come to the point and analyse what steps should be taken to enable women to assert themselves and be empowered enough to avail the rights given to them by the Constitution and various other laws.

UNICEF in its recent report have given three suggestions for empowering women. The first is that she should be enabled to take decisions about herself and her family independently. At present, specially in rural areas, she has to take the permission of her mother-in-law or husband even to visit a health centre. Secondly her economic security should be ensured. Thirdly, she must have adequate representation in politics and government.

The first step for empowering women is to educate them. Education means freedom, freedom from ignorance and exploitation by others. The over all literacy figure for India is 70% but for women it is 60%. But this figure is deceptive. A majority of women live in villages and the literacy in some tribal areas of Bihar, Orissa and Rajasthan is as low as 20%. With such low literacy how these women can be aware of their rights and the laws, which have been enacted to protect them. They are exploited by their family members and employers. The economic

security is a distant dream for them. They work hard in fields and construction sites and get less than their men folk for the same work.

Sexual exploitation is another grey area in the field of the empowerment of women. Almost one woman is raped every forty minutes in India. Even the national capital Delhi has become the rapists' paradise what to say of the remote areas where a number of cases go unreported. To this may be added the workplace and home sexual exploitation which is a great menace for women workers and helpless young girls. The attitude of the police and the society in general is responsible for this situation and very often laws exist in the statute books only.

The next major issue is domestic violence. Domestic violence is not just hitting, or fighting, or an occasional argument. It is an abuse of power. The abuser tortures, and controls the victim by calculated threats, intimidation, and physical violence. Recently the parliament has passed a law against domestic violence and let us hope it will help the hapless women.

About 2.5 crore girls are missing from India's population. In most countries of the world, there are approximately 105 female births for every 100 males. In India, there are less than 93 women for every 100 men in the population. The economic dependence and dowry system can be held to be responsible for female infanticide. But this anti-female bias is not limited to the poor families; the well to do families are also indulging in this abominable practice. Actually much of this discrimination is to do with cultural beliefs and social norms.

The Women Reservation Bill is hanging fire for a long time and no political party is ready to share political power with women. So, this battle for the empowerment of women would have to be fought on two fronts: empowering women politically and changing the mind set of this male dominated Indian society.

We must always remember: When women achieve, the nation advances, when they don't the nation retreats.

Prerna Apartments, Ghaziabad

नव दुर्गा और नारी शक्ति

जगदीश जोशी

तुलसीदास ने जब रामचरित मानस का पहला मंगलाचरण लिखा तब उसके पहिले कुछ श्लोक लिखे थे जो अत्यंत महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं एवं जो भारत की सांस्कृतिक अन्तरात्मा के रहस्य का बोध उजागर करते हैं। पहिले ही श्लोक में उन्होंने 'वन्दे वाणी विनायकौ' लिखा, फिर भगवान शंकर की वंदना में लिखा 'भवानी शंकरौ वंदे श्रद्धा विश्वास रूपिणौ'। तत्पश्चात् वे लिखते हैं 'उद्भव स्थिति संहार कारिणी केशहारिणीं सर्व श्रेयस्करिं सीतां नतोह रामवल्लभाम्'। तुलसी ने महिलाओं की प्रथम वंदना कर अपने काव्य का प्रारम्भ किया। पहिले सरस्वती फिर गणेश, पहिले भवानी फिर शंकर क्योंकि बिना श्रद्धा के विश्वास आर्जित नहीं किया जा सकता। सीता तुलसी के मानस की चरित्र नायिका हैं। वे ऐरी गैरी नहीं हैं, उनकी क्षमता सृजन, संवर्धन और संहार तीनों में समान रूप से समाविष्ट है। वे उस सीता को विनत होते हैं जो रामवल्लभा भी हैं।

'सर्वश्रेयस्करिं सीतां नतोहम् रामवल्लभाम्'

पुराने सभी समाजों की तरह भारत भी पुरुषमुखी समाज रहा है। बहुदेव वादी पुरातन अन्य सभ्यताओं के पुराणों में भी महिलाएं हैं किंतु वे उतनी सशक्त नहीं दिखती और न प्रभावी हैं जो भारतीय मिथकों में दृष्टिगोचर होती हैं।

पौरोगिक कथानक किसी देश की सभ्यता की रहस्यमयी अंतरात्मा का दिग्दर्शन कराते हैं। इस प्रदर्शन में सामान्य मन की भावना जुड़ी रहती है।

अन्याय सभ्यताओं के मिथकों से अलग भारतीय नारी सृजन, संवर्धन और संहार की क्षमता से युक्त एक प्रतिभा है जो सारी राष्ट्रीय संस्कृति को एक कोमल स्नेह धारा से बांधकर, संजोकर प्रस्तुत कर देती है। भारत में मनाए जाने वाले नवरात्र इसी तथ्य का अनुमोदन करते हैं। आदिकाल में ऋग्वेद का महर्षि सगर्व कहता है 'माता पृथ्वी, पुत्रोऽहम् पृथिव्या'। मनीषी पिता का नाम नहीं लेता वह माता के नाम से ही गौरवान्वित महसूस करता है।

कथा है कि आदि शंकराचार्य अपनी माता के एकलौते बेटे थे। पिता का साया उठ गया था और उन्होंने संन्यास लेने का निर्णय ले लिया। ज्ञान और वैराग्य मे पूर्णता प्राप्त करने की ललक थी। साथ ही बिखरे देश को जोड़ने की बलवती इच्छा थी। माता पिता के प्रति

कर्तव्य और राष्ट्र के प्रति कर्तव्य इन दोनों के द्वंद में फंसे आदिशंकर आखिर संन्यासी बन ही गये। प्रशिक्षण पूरा करने के उपरान्त दिग्विजय की इच्छा से अभिप्रेत शंकर के मन को शांति नहीं मिल रही थी। उन्हें अपने ज्ञान और वैराग्य की सिद्धि दूर की कौड़ी प्रतीत हो रही थी। इसी मानसिक अर्न्तद्वन्द से आक्रान्त आदिशंकर वाराणसी पहुँच गये और भटकते रहे। उन्हें संतोष ही नहीं मिल रहा था। ज्ञान की भूख तेज़ हो रही थी। यथार्थ दूर था। भटकते हुए वे देवी अन्नपूर्णा के मंदिर में पहुँचे और अपने अपराधों की क्षमा का स्रोत पढ़ना शुरू किया जिसमें बार-बार यह कहा कि पुत्र कुपुत्र भले हो किंतु माता कुमाता नहीं होती और अंत करते हुए कहा -

‘ज्ञान वैराग्य सिद्धार्थ भिक्षां देहि च भारती’

शंकर मांगते हैं भिक्षा अन्न की नहीं, व्यंजन की नहीं, ज्ञान वैराग्य की सिद्धि की। साथ ही यह भी कहते हैं कि मेरे समान कोई पापी नहीं और पापों को नष्ट करने की क्षमता तुम्हारे अलावा किसी में नहीं है अस्तु जो योग्य है वही करिये। अन्नपूर्णा माता प्रसन्न हुई और आदिशंकर को ज्ञान, वैराग्य, सिद्धि की भिक्षा प्रदान कर दी। उसके बाद ही आदिशंकर न केवल दिग्विजयी हुए वरन् पूरे देश को जोड़ने वाले चार धाम देश के चारों कोनों में स्थापित कर दिये। वह बिखरते देश को जोड़ने का पहला ऐतिहासिक कदम था जिसे आज का अति आधुनिक व्यक्ति समझने में सक्षम नहीं है। नवरात्रि की आराध्य देवी हर दिन अलग-अलग रूपों में आती है और शैलपुत्री से सिद्धिदात्री का स्वरूप ले लेती है। उस पर महादेवी में दैवी पुरुष शक्ति के सारे अंश समाहित, होते प्रदर्शित होते हैं। अश्विनी में नई फसल आती है उसी तरह चैत्र में भी। यह नये सृजन का समारोह है जिसमें सृजन और संवर्धन अन्तर्निहित हैं। अन्न सृष्टि का प्राण है और अन्न पृथ्वी माता के गर्भ से ही प्रकट होता है। फिर वनस्पति का भी उद्गम वहीं से है। सृष्टि, चराचर के जीवन संचरण का स्रोत तो पृथ्वी की उर्वरता ही है। इसी कारण मनुष्य पृथ्वी पुत्र अंकित किया गया है। जहाँ सृजनात्मकता है, संवर्धन और पोषण है, वही दंडात्मकता भी है जो समाज के नियमन और विकास के लिए आवश्यक और अनिवार्य है।

भारतीय सभ्यता की आदिम शुरूआत वर्तमान बलुचिस्तान, और अफगानिस्तान से मानी जाती रही है। उसी बलुचिस्तान में सबसे आदिम शक्तिपीठ है हिंगलाज। विभाजन पूर्व के एक सिंधी यात्री के यात्रा वर्णन से उसकी प्रसिद्धि का अनुमान मिला था। लेकिन भारत की अनेक दूरस्थ वनांचलों की आदिम जातियों के देवी पूजन के गीतों में देवी हिंगला का जिक्र जरूर सुना जाता है। आदि भारतीय के लिए देवी हिंगला आज भी अप्रतिम हैं जो राजनैतिक विभाजनों के बावजूद आदमी को इतिहास सृजन के छोर से जोड़े हुए है।

शरद की शुरुआत का शंखनाद नवरात्रि के प्रथम दिन से ही शुरू हो जाता है। उमस और पावस की घुटन टूटती है। पसीना सूखना शुरू होता है। एक हल्की गुलाबी टंडक मन को रोमांचित कर देती है। धुला-धुला नीला अनन्त आकाश एवं उस नीलिमा को चीर कर समूह में उड़ती विहंगावलि एक रमणीय चित्र प्रस्तुत करती है। इसी गुनगुनाती शीत में ही तो शरद की पूनो भी आती है। नवरात्रि के समाप्त होने के कुछ ही दिन बाद सारी नारी क्षमता महारस की महामाया में कला सृजन और संगीत को एक साथ समाहित कर एक रूप हो जाती है।

अद्भुत कल्पना प्रखरता का यह देश रहा है, जो संपूर्ण सृष्टि को अंतर्द्वंद्व विहीन कर एक अनोखा समन्वय संसार के सामने प्रस्तुत कर देता है। बच्चा तो माता को ही प्रथमतः जानता है और उसी से याचना भी करता है। स्नेह, सौहार्द, संरक्षण और अनुशासन तथा नियमन का कर्तव्य भी माता के कंधो पर ही है। आखिर समाज को चलाता कौन है? समाज को तो समूह ही चलाता है। समूह व्यक्तियों से बनता है और व्यक्ति का बुनियादी प्राथमिक प्रशिक्षण तो माता का ही उत्तरदायित्व है। यदि बारीकी से गौर किया जाए तो समाज को बनाने बिगाड़ने का माध्यम कहाँ है? वह निश्चित तौर पर माता की स्नेह रज्जु से बंधा हुआ है। आखिर व्यक्ति वहीं तो अपना आश्रय तलाशता है जहाँ उसे कम से कम सौजन्यमयी शांति और समवेदना का अक्षय भंडार मिले। वह उसे अपनी माता से ही मिल सकता है।

बहुदेववादी, पुरुषाभिमुखी भारतीय संस्कृति ने मातृशक्ति को जो व्यापकता और प्रतिष्ठा दी है वह अद्भुत है। वह ज्ञान विज्ञान के अनुभूत अध्ययन से प्रवाहित हुई है। आखिर महिषासुर मर्दन के संदर्भ में, शुंभनिशुंभ के सामने निष्प्रभ हो गयी, तब यह विचार करना पड़ा कि आखिर वह निष्प्रभ क्यों हो गयी? समाधान किया गया है कि इन दैत्यों ने कठिन तपस्या से वरदान प्राप्त किया और देवता पराजित हो गये। तात्पर्यतः देवता कभी तपस्य धनी नहीं रहे, वे सदैव अप्सराओं के साथ गुलछरें उड़ाते थे। देवताओं का राजा इन्द्र स्वतः परस्त्री गमन और बलात्कार का अपराधी रहा है और उसके पुण्य क्षय हो गये थे। पुरुष देवताओं के आचरण सदैव संदेह की परिधि में घिरे रहे। इसी कारण उन्हें मातृशक्ति के सामने आत्म समर्पण कर अपने सभी साधन हथियार उसी के सुपुर्द करने पड़े। पुरुष देवताओं की शक्ति का हास और देवियों की शक्ति का प्रसार एक विशेष प्रसंग प्रस्तुत करता है।

नर और नारी समाज के रथ के दो पहिये हैं। रथ एक पहिये से नहीं चलता। अतः रथ के समुचित संचालन के लिए दोनों पहियों को बराबरी में रखना होगा। जहाँ पुरुष प्रधन नारी शक्ति, निष्प्रभ हो वहाँ देवियों की शक्ति एकांकी नहीं है। अकेला पुरुष देवता ही

सर्व सामर्थ्यवान नहीं है। उसके साथ शक्ति रूपी नारी का रहना अनिवार्य है और वह पुरुष शक्ति नारी के अनुग्रह पर अवलंबित है। भक्ति और श्रद्धा से ही विश्वास और संकल्प का उदय होता है। भारतीय दार्शनिकों ने सृष्टि के रहस्यों को निर्गुण रूप से उठाकर सगुण रूप में प्रस्तुत करने का असाधारण कार्य किया है जो भारतीय संस्कृति की जिजीविषा है।

पूर्व सहस्राब्दी में जो अब समाप्त हो चुकी है भारतीय मानसिकता एक अक्षम्य अपराध से ग्रसित हुई थी जब यहाँ के धर्माधिकारियों ने औरतों को वेद पढ़ना और सुनना दंडनीय घोषित किया। उन मूर्खों ने यह नहीं सोचा कि वेदाओं की ऋचाओं की संरचना में विदुषियों का कितना बड़ा योगदान था।

इसी दुष्कर्म के चलते भारत की नारी शक्ति के विकास को रोकने में धर्माधिकारियों ने अनेकों फतवे गढ़े और प्राचीन नजीरों को कलिवर्ष घोषित कर दिया। उसका परिणाम सामने आया जब देश को शताब्दियों तक दास बनकर रहना पड़ा और आक्रमणकारियों के उत्पीड़न को मन मार कर सहना पड़ा। इसके पलट पश्चिमी देशों में ज्यों-ज्यों नारी को समानता मिलने लगी वे सभ्यता के भाग्य विधाता बन गये। समय आ गया है जब भारतीय कर्मकांड को दकियानूसी और सड़ी गली व्यवस्थाओं को कठोरता से समाप्त किया जाए। स्वामी दयानंद और महात्मा गांधी ने उन अवरोधों को तोड़ा और देश स्वाधीनता के पथ पर अग्रसर हुआ। उठने लगी है आवाज़ आरक्षण की, लेकिन महज आरक्षण क्यों? समानता क्यों नहीं? राजनीति में अनिवार्यता क्यों नहीं? सारे राजनैतिक दलों के परिदृश्य में सम्यक भागीदारी क्यों नहीं?

देश 21वीं शताब्दी के दरवाजे पर खड़ा है। नया युग नये स्वर की अपेक्षा करता है। दुर्गासप्तशती का रहस्य महज कर्मकांड और यज्ञ हवन में नहीं है। उसकी गहराई में प्रवेश कर उस रहस्य को तलाशना होगा जो उद्भव, स्थिति और संहार के बीच सामंजस्य स्थापित कर सके। मूर्ति भर ही नहीं, मूर्ति के बीच छिपी अन्तर्कथा के रहस्य को साकार आचरण और अनुसरण से करना होगा। कर्मकांड प्रदर्शन और व्यावसायिकता से परे मिथक रहस्यों को आत्मसात कर उनका नये संदर्भ में परिमार्जित प्रयोग ही सच्ची अराधना होगी और यह देश समानता का वादी स्वर बन सकेगा।

औरत को समझने के लिए जन्म लेना होगा औरत का

वन्दना मिश्रा

अरस्तु ने स्त्री के विषय में एक जगह कहा है कि कुछ गुणवत्ता की कमी के कारण ही स्त्री, स्त्री बनती है। वह पुरुष को प्रकृति की पूर्णता मानता है। उसने स्त्री को स्वायत्त सत्ता नहीं माना, कारण उसमें निर्णय लेने की क्षमता नहीं होती है। वह स्वयं को पुरुष के अनुसार बनाती है। सीमोन द बोउवार कहती हैं कि स्त्री जन्म नहीं लेती बल्कि बनाई जाती है। प्लेटो ने ई'वर को धन्यवाद दिया कि उसने उसको (प्लेटो) को पुरुष बनाया। कवियों एवं लेखकों जैसे संवेदन'ील लोगों ने स्त्री को बेबस, लाचार और मजबूर के रूप में चित्रित किया पर इसे बीते युग की बात बता कर संतोष किया जा सकता है।

आज की नारी आकाश की ऊँचाइयों को छूती फौज की अधिकारी, सफलतम व्यापारी और गृहस्थी के काम को भी चटपट निपटाती अर्थात लक्ष्मी, दुर्गा और सरस्वती को अपने में समेटे हुए गर्व का विषय, कानून से मजबूती प्राप्त कर पुरुषों की बराबरी करती हुई 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' अश्रुपूरित भावुकता से मुक्त, छुईमुई की भूमिका से निकल साहसी और तेजस्वनी। पर यह तस्वीर का पहलू, मीडिया द्वारा पोषित, प्रेषित, दूसरा यह कि कर्म क्षेत्र विस्तृत पर सहायक हाथ नहीं, कानून का वरदहस्त पर व्यवस्था इतनी जटिल कि राहत नहीं। सम्पत्ति में अधिकार पर अपने ही लोगों का कोप भाजन। सत्य का एक रूप यह भी। विनोद कुमार शुक्ल लिखते हैं -

“ एक अकेली आदिवासी लड़की/ अकेले जंगल में जाने से नहीं डरती/ शेर चीते भालू से नहीं डरती पर/ डरती है महुआ लेकर गीदम के बाजार जाने से।”

नारी विमर्श का शोर एक तरफ शुभ दूसरी तरफ बाज़ार की माँग से सम्बन्धित। विमर्श करने वालों का मन्तव्य भी संदेहास्पद। नारी मुक्ति का तात्पर्य यौन शुचिता से मुक्ति, पुरुष से मुक्ति, परिवार से, मूल्यों से मुक्ति मात्र या विस्तृत सन्दर्भ। एक तरफ स्त्री मुक्ति का भ्रम पाले दूसरी ओर मेक-अप में ज़रा सी चूक आत्मविश्वास डिगाने में सक्षम। रूप के जाल में फँसी स्त्री पुरुष के जाल से मुक्त नहीं हो सकती। स्त्री के विषय में कभी-कभी मुक्तिबोध के शब्दों में कहें तो 'गलत जगह समझौते करना, गलत जगह लड़ जाना' हो जाता है। वह स्वयं अपनी देह से इतनी आक्रान्त कि असुरक्षित लगती। दूसरे उसे किस तरह देखते हैं यह अलग बात पर वह स्वयं को कि तरह देखती है यह परीक्षणिय है।

‘नाओमी वुल्फ’ ने कहा कि ‘स्त्री गृहस्थी से मुक्त हुई तो सौन्दर्य प्रसाधनों ने उसे जकड़ लिया’। चुस्त दुरूस्त रहना गलत नहीं परन्तु उसे मानसिक रोग की तरह अपनाना गलत है।

इसके मूल में कहीं न कहीं मीडिया का प्रोत्साहन व चेतावनी है, जो बताता है कि बिकने लायक हर वस्तु का प्रदर्शन आवश्यक है चाहे वह स्त्री सौन्दर्य ही हो। विनय सौरभ के शब्दों में कहें तो ‘वे बेहद शालीन ढंग से उच्छश्रृंखल होती स्त्रियाँ थीं।’

कहीं ऐसा तो नहीं कि मुक्ति का भ्रम पाले वे अपने आन्दोलन को गलत दिशा दे रहीं हों या इस भ्रम के चलते उनका आन्दोलन-आन्दोलन ही न रह जाए। यौन शुचिता से अनियंत्रित मुक्ति भी अनेक प्रकार की सामाजिक समस्यायें उत्पन्न करेंगी। नारी विमर्श के कुछ प्रवर्तक उन्हें किसी प्रकार से भी देह से ऊपर नहीं उठने दे रहे हैं। जैसा शोषण पहले बंधन के नाम पर था वैसा ही अब मुक्ति के नाम पर है। तर्क यह है कि स्त्री देह के जिस स्तर पर प्रताड़ित हुई उसी स्तर पर मुक्त होगी। यह अपने आप में अपूर्ण है क्योंकि जिन स्थानों पर यौन शुचिता का बन्धन नहीं वहाँ भी नारी स्वतंत्र हो ज़रूरी नहीं। प्रायः शोषक वर्ग के समान बन जाना शोषित वर्ग की चाहत और कभी-कभी मजबूरी बन जाती है। यह मुक्ति की प्राथमिक स्थिति है। भारत का नारी वादी आन्दोलन प्रथम स्थिति से ही गुजर रहा है।

वास्तविक स्वतंत्रता आत्मनिर्णय का साहस आना है। सवाल यह है कि यह साहस आए कैसे? क्योंकि आर्थिक रूप से स्वतंत्र स्त्री भी सब समय निर्णय नहीं ले पाती। आर्थिक व मानसिक दोनों प्रकार से स्वतंत्र स्त्री ही वास्तविक स्वतंत्र है।

परन्तु पाश्चात्य संस्कृति, का अन्धानुकरण कर स्त्रियाँ ‘जो चाहे सो’ करने की स्वतंत्रता प्राप्त करना चाह रही हैं। यह लक्ष्य से भटकाने वाला बिन्दु है। स्त्री स्वतंत्र होगी तो उसके मन में प्रेम की इच्छा भी होगी और चयन का अधिकार भी, पर यही सब कुछ नहीं। स्त्री सोचती है कि वह पुरुषों का अपनी इच्छानुसार उपभोग कर रही है पर होता उल्टा ही है। जो ऐसा नहीं करती वे पुरुषविहीन समाज की कल्पना करने लगती हैं। स्थिति इतनी घातक है कि कुछ स्त्रियाँ संख्या कम होने पर स्वयं के वांछनीय होने का भ्रम पाल लेती हैं। और इसी आधार पर ‘कन्या भ्रूण हत्या’ को दबे मन से समर्थन देती हैं।

स्त्री विमर्श वर्तमान समय में देह विमर्श के इर्द-गिर्द चक्कर काट रहा है। स्वतन्त्रता का यह कानफाडू शोर भी स्त्री के खिलाफ साजिश ही है क्योंकि यह नारा भी उनके लिए

पुरुष ही लाए हैं। वे स्त्री मनोविज्ञान को समझने का दावा करते हैं और गर्व से कहते हैं कि स्त्री अपने दैहिक शोषण की बात केवल चर्चा में आने के लिए करती हैं क्योंकि ये उसमें भी रसानुभूति करते हैं। अब ऐसे व्यक्ति स्त्री-विमर्श की मशाल उठायेगे तो भटकाव तो होगा ही।

नारी विमर्श का तात्पर्य सिर्फ इतना कि अपने तन-मन और धन का पूरे विवेक से निर्णय नारी ले सके। ज़ाहिर है कि यह स्वतंत्रता गिड़गिड़ाने से नहीं मिलेगी। प्रायः अपने जीवन की कई महत्वपूर्ण उपलब्धियों को स्त्री इस भय से छोड़ देती है कि उस पर चरित्रहीनता का इलज़ाम न लग जाये क्योंकि उसकी वास्तविक प्रतिभा को भी प्रायः किसी न किसी की दया माना जाता है। एक मानसिक दबाव झेलते हुए वह आगे बढ़ती है। बाहर निकलने वाली हर स्त्री इन साजिशों से गुज़रती है, हर पल उसे सवालिया नज़रों का सामना करना पड़ता है और वे ही नज़रें अवसर मिलने पर भूखी नज़रों में बदल जाती हैं। इसलिए कुछ औरतें चीख-चीख कर अपने मुक्त जीवन की बात कहती हैं। पता नहीं कहाँ तक सही है। पर स्वयं को समाज की नज़रों में सही साबित करने में स्त्री जितनी शक्ति लगाती है, उससे कहीं कम में वह ज़्यादा रचनात्मक कार्य कर सकती है। नैतिकता बेड़ी की तरह नहीं होती तो जो स्वभावतः नैतिक है उसे ढोंगी नहीं माना जायेगा। नारी स्वतन्त्र तब होगी जब उसे देह से अलग कुछ माना जाएगा।

एक अकेली स्त्री चाहे सौ प्रतिशत सही हो पर उसका मूल्यांकन और ही तरीके से होता है। एक स्त्री के लिए समाज कठिन स्थितियाँ उत्पन्न कर देता है, इतनी कि कभी-कभी उसे आत्महत्या या बेमेल विवाह को विवश हो जाना पड़े।

मंचों से प्रसारित किया जाता है कि नारी स्वतन्त्र निर्णय लेने में सक्षम है। कानून नारी के साथ-साथ है। एक तरफ डरती सहमती अपनी इज़्जत को सब कुछ समझती नारी दूसरी तरफ समाज का रुख देखकर विद्रोही तेवर अपनाते को विनाश की हद तक जाती नारी। ये दोनों उसकी व्यापकता को हानि पहुँचाते हैं। निश्चित रूप से स्वतन्त्र चेता स्त्री गुलाम के रूप में अपनी देह पुरुष वर्ग को सौंप नहीं सकती, इसलिए यह स्वतन्त्रता का ढोंग रचा गया जिससे स्त्री को लगे कि वह स्वेच्छा से ऐसा कर रही है जबकि चलती वह पुरुष व बाज़ार के इशारे पर ही है। पुरुषों ने नारी विमर्श की डोर कुछ इस तरह पकड़ी है कि लगे वह नारी के हाथ में है। इस गहरी साजिश को तोड़ना बहुत ज़रूरी है। इसी भ्रम में पड़ी स्त्री पुरुष-उपभोग का तर्क देती है परन्तु उसका अपना तर्क न होने से वह सन्तुष्ट नहीं रहती, क्योंकि पुरुष के चले जाने पर वह स्वयं को छला महसूस करती है और शिकायतें करती है। पुरुष के लिए यह जीवन का एक क्षण और स्त्री के लिए सम्पूर्ण जीवन बन जाता है। आज की नारी भावुकतावश समर्पण कर देती है, परन्तु इतनी भोली और निष्ठायुक्त भी नहीं रह गयी कि अपनी भावना को कुचला जाता देख सके, अतः उसके तर्क उसे कठोर बनने को विवश करते हैं। यह स्थिति समाज के लिए और घातक है।

इस स्थिति में स्त्री की वास्तविक समस्याओं से मुँह चुराया जा रहा है। आज बार बालाओं की समस्या, वेश्याओं के पुनर्वास, कन्या भ्रूण हत्या की समस्या, दहेज उत्पीड़न, दहेज हत्या, कोई भी समस्या इतनी छोटी नहीं जिसे टाला जा सके।

**स्त्री समाज में स्वतन्त्र रहे समाज से नहीं, यह बात ध्यान में रखनी चाहिए।
पश्चिमी समाज को भाँति समानता इस हद तक उचित नहीं कि अपना मूल
ही खत्म हो जाये।**

ज़ाहिर है जब इस संस्कृति की दुहाई दी जाती है तो पुरुषों को इससे मुक्त नहीं रखा जाना चाहिये। स्त्री इतनी स्वतन्त्र हो कि किसी और के नियन्त्रण के बिना ही सही राह चले यही समाज का इष्ट हो, और इसके लिए पुरुषों को उसका सहयोग बिना दया का भाव दिखाए करना होगा, वरना नुकसान दोनों का होगा।

हमारा समाज आज दो मुँहा प्रतिमान रखता है। एक तरफ स्वतन्त्रता का समर्थक दूसरी तरफ सामन्ती मानसिकता वाला। पुरुष बाहरी स्त्रियों को जो सलाह देता है वह अपनी पत्नी को नहीं देता क्योंकि उससे उसके बिगड़ जाने का भय रहता है। तथाकथित स्त्री विमर्शी चाहते हैं कि स्त्री स्वयं अपने को (उनके लिए) मुक्त करे, जिनसे उनका काम आसान हो। दुष्यन्त के शब्दों में -

उनकी अपील है कि उन्हें हम मदद करें।
चाकू की पसलियों से गुज़ारिश तो देखिए।

बरसों पहले सिमोन द बोउवार ने प्रश्न उठाया था कि 'यह दुनिया हमेशा पुरुषों की रही, मगर क्यों? यह प्रश्न आज भी उसी प्रकार ज्वलंत है यद्यपि उत्तर है, पर संतुष्ट करने वाला नहीं। कारण चाहे आर्थिक दुर्बलता हो या मानसिक कोमलता व भावनात्मक जुड़ाव स्थिति विचारणीय है।

अख़बारों में प्रतिदिन छपती बलात्कार व दैहिक शोषण की ख़बर रिश्तों व उम्र में भले परिवर्तित हो जाय, परन्तु मूल में वही प्रश्न चमकता दिखता है। नारी शिक्षा व बाल-विवाह उन्मूलन कानून भले बना हो पर स्थितियाँ उसे मुँह चिढ़ाती लगती हैं। घरेलू हिंसा में मामलों को आपसी मामला कह कर टाल दिया जाता है। पति पतित होकर भी पूज्य बने रहने की सामाजिक व कानूनी जिद्द करता और जीत भी जाता है। पिछले वर्ष घरेलू हिंसा निरोध कानून पारित हुआ। इसे महिला संगठनों व कानूनवेत्ताओं की दस वर्ष की मेहनत का नतीजा माना गया। 1979 में महिलाओं के साथ हो रहे भेदभाव के खिलाफ सम्मेलन हुआ 'सी ई डी डब्ल्यू जहाँ 1170 देशों ने हस्ताक्षर किए और 14 वर्ष बाद महिला पर हो रही हिंसा को मानवाधिकार हनन का दर्जा मिला। वियेना में 1993 में संयुक्त राष्ट्र के अन्तर्गत मानवाधिकार सम्मेलन हुआ। बीजिंग सम्मेलन से और आशा जगी। 1992 में भारत में कार्यरत

लायर्स कलेक्टिव ने घरेलू हिंसा निरोधक विधेयक का मजमून तैयार किया। तमाम राजनैतिक उठा-पटक के बाद यह विधेयक कानून बना। संतोषजनक बात यह थी कि इसमें सिर्फ पत्नी नहीं, वरन् साथ रह रही या परिवार की हर स्त्री सम्मिलित है। दूसरे सिर्फ शारीरिक हिंसा को हिंसा नहीं माना गया, मानसिक व शाब्दिक प्रताड़ना भी हिंसा के अन्तर्गत लायी गयी। तीसरा पहलू यह कि उसे बात-बात में घर से निकालने की धमकी न पिता व भाई दे सकते हैं न पति। यह तो कागजी पक्ष है, परन्तु इसका व्यवहारिक पहलू तभी फलदायी होगा जब कानून के रखवाले तथा समाज के लोग साथ दें। हम सब जानते हैं कि स्त्री ससुराल में मर जाना इसीलिए पसन्द करती है क्योंकि समाज में विद्रोह करने वाली स्त्री खराब औरत के नाम से जानी जाती है। अकेली स्त्री मानो खुला आमंत्रण हो, इस प्रकार देखी जाती है। हम नैतिक मूल्यां की दुहाई देते हैं, परन्तु अपने परिवार की बच्चियों का दैहिक शोषण अनदेखा कर जाते हैं। तात्पर्य यह कि कानून तभी मदद कर सकता है जब उचित माहौल भी हो। महिला के प्रति सही नज़रिया भी हो।

नारी विमर्श वर्तमान समय में किनारे खिंची गई रेखा मात्र नहीं रह गया है, न चमत्कारी स्लोगन, न महज सरकारी खाना-पूर्ति। यह अपनी शक्ति व सीमा पहचान चुकी लामबन्द स्त्रियों की जंग है, जिसका उद्देश्य समाज को बेहतर बनाना है। वह माँ बनकर अपने पुत्र को सिर्फ मर्द नहीं संवेदनशील मनुष्य बना रही है। वह पुरुष की मानसिकता को जो कुँठित होकर ज्यादा हिंसा करता है, समझती है। एक तरफ वह पुरुष की बातों को सहानुभूतिपूर्ण तरीके से सुनती है दूसरी तरफ 'नारी-नारी की शत्रु' की उसकी मानसिकता का खंडन भी करती है। उसे अपनी भूमिका से इंकार नहीं। वह मातृत्व के गौरव से इंकार नहीं करती परन्तु यह ज़रूर चाहती है कि सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होने पर उसे प्रताड़ित न किया जाये। वह अपना घर तोड़ना नहीं चाहती परन्तु यह चाहती है कि उसकी टूटी-फूटी दीवारों की मरम्मत अवश्य की जाये। स्त्री शिक्षा के बल पर आर्थिक ही नहीं मानसिक रूप से भी स्वतंत्र है। वह केवल बल प्रयोग से नहीं तर्क व प्रेम से जीती जा सकती है। उसे पुरुष से नहीं उसके दोहरे मानदण्ड से नफ़रत है। वह जबरदस्ती सती-सावित्री नहीं बन सकती पर अपना ज्ञान होने पर स्वयं बन सकती है। अतः उस पर व्यर्थ पहरे न लगाकर उसके निर्णय का सम्मान होना चाहिए।

वह अपने हिस्से का समझौता करने से हिचकती नहीं। अब बारी पुरुष की है कि वे अपने भीतर के कोमल भावों को सामने लाए। उम्मीद की किरण तो दिखती ही है-

ये कौन झाँकता है, किवाड़ों की ओट से
बत्ती बुझा के देख, सबेरा न हो कहीं।

हमें यह न कहना हो कि 'औरत को समझने के लिए जन्म लेना होगा औरत का' स्त्री-पुरुष का सुख-दुःख साझा हो तभी कल्याणकारी समाज की स्थापना हो सकेगी।

स्त्री मुक्ति के भौतिक उपकरण

आजाद आत्माएँ आजाद शरीरों में ही रहती हैं। अतः स्त्री मुक्ति का कखग यह है कि स्त्रियों की उन भौतिक परिस्थितियों को बदला जाए जो उनकी चेतना को सीमित करती हैं।

कमल किशोर

स्त्री मुक्ति पर जिस तरह का लेखन हमारे यहाँ ज्यादातर देखने में आ रहा है, उससे यह झलक मिलती है कि पुरुषों द्वारा शोषण ही स्त्रियों की एकमात्र समस्या है। यह समस्या इतनी स्पष्ट है, फिर भी आश्चर्य की बात यह है कि इसे हजारों तरह से लिखा जाता है और थीम की नवीनता हमेशा बनी रहती है। इसका एक कारण शायद यह है कि स्त्री पुरुष के संबंध चाहे जितने बदलते रहे हों, उनके बुनियादी चरित्र में कोई फर्क नहीं आता। लेकिन स्त्री मुक्ति के प्रश्न क्या दुनिया भर में एक जैसे हैं? या, विभिन्न समाजों में स्त्री मुक्ति के औज़ार अलग-अलग होंगे? देश की 90 प्रतिशत स्त्रियों को अपनी मुक्ति के लिए जिन औज़ारों की जरूरत है, ये औज़ार वे नहीं हैं जो मध्यवर्गीय स्त्रियों की भाषा को आधुनिक तथा उत्तर आधुनिक बनाते हैं, जिसके बिना पश्चिमी देशों में होने वाले सेमिनारों का निर्मंत्रण पत्र प्राप्त नहीं किया जा सकता।

आजकल तुलसी दास को प्रतिक्रियावादी कवि माना जाने लगा है, पर उन्होंने सती अनसूया के मुँह से कहलवाया है कि विधाता ने स्त्री को पता नहीं किस तरह रचा है कि सपने में भी उसे सुख नहीं है। सीता ने, जिससे ये पंक्तियाँ कही गयी हैं, अपने निजी अनुभव से निश्चय ही इस सत्य को पहचाना होगा। उनके सुख के एकमात्र दिन वे थे जब जनक दुलारी के रूप में उन्होंने अपनी शुरुआती अठारह-बीस साल बिताये थे। बाद में तो निराला के शब्दों में 'दुख ही जीवन की कथा रही'। प्रश्न उठता है कि निराला के दुख में और सीता के दुख में क्या कोई साम्य है? किसी भी व्यक्ति के दुखों का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता। लेकिन 'सरोज स्मृति' की पूरी थीम का सारांश यही प्रतीत होता है - 'धन्ये, मैं पिता निरर्थक था, कुछ भी तेरा हित कर न सका।' निश्चय ही निराला के जीवन में और भी वेदनाएँ थी, पर बेटे सरोज के संदर्भ में निराला का भौतिक दैन्य ही प्रकट हुआ है। निराला अपने व्यक्तित्व के बल पर अपने भौतिक अभावों की मार से पार पा सकते थे, पर बेटे के दैन्य का वे क्या करते जिसके दुख उन्हें लगाता सालते रहे। सीता के प्राकृतिक माता पिता के बारे में कोई सूचना नहीं मिलती। इतना निश्चित है कि वे एक राजा के घर में पली बहीं, एक राजकुमार से ब्याही गयीं और अपने चक्रवर्ती पति द्वारा गर्भावस्था में परित्यक्त हुईं। इसी तरह, द्रौपदी ने भी राज परिवार में जन्म लेने के बावजूद कम दुख नहीं झेला। इसका

संदेश यही है कि संपन्न परिवार की होने से ही स्त्री को दुख से मुक्ति नहीं मिल जाती। वह पराधीन है और पराधीन ही रहती है। लेकिन अगर वह गरीब की बेटा और गरीब की ही जोरू हो, तब? तब क्या उसका दुख दुगुना-तिगुना नहीं हो जाता?

भारत के नारीवादियों पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे स्त्री मुक्ति की पश्चिमी अवधारणाओं से कुछ ज्यादा ही प्रभावित हैं। इस आरोप के पीछे प्रमुख बात यह होती है कि पश्चिम की स्त्रियों को व्यक्तिगत जीवन की जो स्वाधीनताएँ चाहिए, भारत की स्त्रियों की उनकी जरूरत नहीं है। इससे भी आगे, वे स्वाधीनताएँ यहाँ उपलब्ध करा दी जायें, तो भारत की स्त्रियाँ बिगड़ जायेंगी। समाज में अराजकता फैल जायेगी। परिवार नष्ट हो जायेगा। भारतवादियों की यह आशंका जितनी डरावनी लगती है, वस्तुतः उतनी है नहीं। एक आतातायी, लेकिन अनुशासित पारिवारिक और सामाजिक व्यवस्था की तुलना में बाहरी नियंत्रण से मुक्त और स्वतंत्र व्यवस्था हमेशा बेहतर होती है- इसके तत्कालिक नतीजे जो भी निकलते हों। स्पष्ट है कि इस कोटि के भारतवासी पुरुष की आजादी से नहीं, स्त्री की आजादी से डरते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि स्त्री की आजादी से डर पश्चिमी समाजों में भी कम नहीं रहा है। इन समाजों में स्त्री संघर्ष का इतिहास लाल कालीन से होकर नहीं गुजरा है। एक-एक सुविधा के लिए दशकों और शताब्दियों तक संघर्ष करना पड़ा है, जैसे मताधिकार। इस दृष्टि से भारत की स्त्रियाँ किस्मत वाली है कि जिन अधिकारों के लिए पश्चिम की स्त्रियों को काँटों भरे रास्ते पर लंबा संघर्ष करना पड़ा है, वे अधिकार उन्हें आसानी से मिल गये हैं। बेशक अभी तो ये कागज पर ही हैं लेकिन कागज पर हैं, इसलिए बहुत सी स्त्रियाँ इनका उपयोग भी कर पा रही हैं। जो इन अधिकारों का उपयोग करने की स्थिति में आज नहीं हैं, उनकी दशा हमेशा ऐसी नहीं रहेगी। मिठाई है, तो उसे खाने का प्रलोभन भी होगा।

जिस तथ्य की ओर भारतवासियों का ध्यान नहीं जाता और जिसकी चर्चा भारत में होने वाले नारीवादी चिंतन से भी नदारद रहती है, वह यह है कि भारत की ज्यादातर स्त्रियों को पहले संबंधों में मुक्ति चाहिए या उन परिस्थितियों से मुक्ति चाहिए जो उनके समय, उनकी श्रमशक्ति और उनकी ऊर्जा को इस तरह निचोड़ लेती हैं कि उन्हें गैर-भौतिक चीजों के बारे में सोचने का मौका ही नहीं मिलता। स्वतंत्रता कोई हवाई चीज नहीं है। स्वतंत्रता की भावना रहती हमारे मन में ही है, पर उसका उपयोग जिन परिस्थितियों में होता है, वे मुख्यतः भौतिक हैं। जो स्त्री रोज अठारह घंटे काम करने को बाध्य है, उससे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वह जीवन के उन पहलुओं पर ध्यान दे सकेगी जिनका संबंध अस्तित्व की बुनियादी सार्थकताओं से है? सभ्यता के विकास का संबंध फुरसत से है। इसका

मतलब यह नहीं है कि जिनके पास फुरसत नहीं है, वे असभ्य होते हैं। लेकिन उन्हें पढ़ने-लिखने, सोचने विचारने और मिलने जुलने की फुरसत हो जाये, तो वे और ज्यादा सभ्य हो सकते हैं। विचारणीय है कि स्त्री मुक्ति के प्रश्नों पर क्या वे महिलाएँ ही ज्यादा विचार नहीं कर रही हैं, जिनके पास इसके लिए पर्याप्त समय है? यदि उन्हें पूरे घर के लिए दो बार खाना बनाना पड़े, परिवार के सभी सदस्यों के कपड़े साफ करने पड़ें, झाड़ू-पोंछा करना पड़े और कुँए या नल से पानी लाना पड़े, तो समाज को उनका रचनात्मक योगदान कितना रह जायेगा?

ऐसी महिलाएँ चूँकि स्वयं श्रम नहीं करतीं, शायद इसीलिए वे श्रमिक वर्ग की स्त्रियों की मन और शरीर को तोड़ देने वाली श्रम-स्थितियों की कल्पना तक नहीं कर पातीं। ऐसे में यह अस्वाभाविक नहीं है कि वे नारी मुक्ति के ऐसे मुद्दे उठाती हैं, जो देश की सामान्य औरतों के हृदय में सनसनी पैदा नहीं कर पाते। ये मुद्दे बेकार हरगिज़ नहीं हैं। लेकिन इन्हें महानगरों की सीमाओं से बाहर ग्राहक तभी मिल सकेंगे जब उन ग्राहकों के पास पर्याप्त समय होगा। इसलिए स्त्री पुरुष की बराबरी का मुद्दा उठाने वालों को यह याद दिलाना जरूरी लगता है कि स्त्री-स्त्री की बराबरी भी उतना ही महत्वपूर्ण मुद्दा है।

भारत की बहुसंख्य स्त्रियों के लिए नारी मुक्ति का अर्थ क्या है? मैं चार चीजों का उल्लेख करना चाहूँगा : (1) घर में नल का पानी, (2) रसोई गैस (3) वॉशिंग मशीन और (4) रेफ्रिजरेटर। ये चारों चीजें स्त्री के जीवन को आसान बनाती हैं। उसे फालतू श्रम से मुक्त करती हैं। उसके जीवन में फुरसत ले आती हैं। उसके भीतर आत्मविश्वास भरती हैं। आज जिस स्त्री के पास इनमें से कोई एक भी सुविधा नहीं है, उसकी स्वतंत्रता वांछित स्तर से कम है। मोटरगाड़ी, पंखे, टेलीविजन आदि को आप विलासिता की श्रेणी में रख सकते हैं। इनके बिना आदमी का काम चल सकता है। लेकिन नल, गैस, कपड़े धोने की मशीन और फ्रिज के बगैर आज की स्त्री का जीवन अधूरा है।

गरीब परिवारों की स्त्रियों के दैनिक जीवन पर एक नज़र डालने से ही यह स्पष्ट हो जायेगा कि उनका कितना समय पानी का इंतज़ाम करने, कोयले या लकड़ी की आँच पर खाना बनाने और कपड़े धोने में नष्ट हो जाता है। इन कामों में सिर्फ समय ही नहीं लगता, ऊर्जा भी खर्च होती है। फलस्वरूप ऐसी हर स्त्री को हमेशा यह लगता रहता है कि करने को काफी काम पड़ा है। उसके पास समय नहीं है। लेकिन मामला इतना ही नहीं है। चूँकि ये सारे काम महत्वहीन माने जाते हैं, इनका मूल्य नहीं आँका जाता, इन कामों को करने

वाले को हीन समझा जाता है, इसलिए परिवार में – और फलतः समाज में – श्रमिक स्त्रियों की हैसियत गिरी हुई रहती है। जाति व्यवस्था के ढाँचे में जो स्थान शूद्र का है, परिवार में वही स्थान स्त्री को मिलता है। वह घर की दासी है। उसका अपना कोई वजूद नहीं रह जाता। वह अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए जीती है। 'बिन घरनी घर भूत का डेरा' की कहावत एक नहीं, कई अर्थों में सच है।

इस सिलसिले में सिंगर मशीन के आविष्कार की कहानी को याद करना उपयोगी हो सकता है। आज कपड़ा सिलने की मशीनें कई नामों से आती हैं। लेकिन कुछ समय पहले तक सिंगर कंपनी इस क्षेत्र में अकेली थी। यहाँ तक कि सिलाई की किसी भी मशीन को सिंगर मशीन कहने की प्रथा है, जैसे हमारे यहाँ किसी भी डिटरजेंट पाउडर को सर्फ कह देते हैं। सिंगर कंपनी का नाम सिंगर नाम के महाशय पर पड़ा है। ये संयुक्त राज्य अमेरिका के रहने वाले थे। शुरू से ही मशीनों में रुचि थी। जब उन्होंने देखा कि कपड़े सिलने में उनकी पत्नी के हाथ दुख जाते हैं, कभी-कभी सुई गड़ जाती है और खून टपकने लगता है, तो उन्होंने कपड़े सीने की मशीन बना डाली। यह मशीन व्यवसायिक रूप से बहुत सफल हुई और देखते ही देखते पश्चिमी दुनिया में छा गयी, लेकिन इसके आविष्कार का प्रेरणा स्रोत क्या था? एक पति का अपनी पत्नी से लगाव। कहने की जरूरत नहीं कि सिलाई मशीन ने सिंगर महाशय की पत्नी को एक महत्वपूर्ण अर्थ में मुक्त किया।

भारत की करोड़ों-करोड़ स्त्रियों को ऐसी मुक्ति की अर्जेंट जरूरत है।

‘पुरुष-प्रधान समाज’ की शिकायत का रटंत लगाने वाली स्त्रियों से निवेदन है कि उनके एजेंडा में पहला स्थान स्त्रियों को वे भौतिक संसाधन दिलाने का होना चाहिए जिनसे उनका जीवन आसान बनता है, उनके समय और ऊर्जा की बचत होती है और उनमें आत्म विश्वास आता है।

पुरुष की मानसिकता बदलना आसान नहीं है। परिवार के ढाँचे में लोकतंत्र ले आना और भी कठिन है। अपने शरीर और कोख पर स्त्री का अपना अधिकार हो, यह बात मनवाने में काफी समय लगेगा। लेकिन भौतिक स्थितियों को तो बदला ही जा सकता है। हर स्त्री के पास गैस का चूल्हा होना चाहिए, हाथ बढ़ाते ही नल चल पड़े और उससे पानी आने लगे – यह सुविधा हर स्त्री को मिलनी चाहिए, घर में एक छोटा सा फ्रिज होना चाहिए ताकि खाने की बरबादी न हो और एक बेला की सब्जी दूसरे बेला में काम में लायी जा सके – ये ऐसी माँगें हैं जो पूरी हो जायें तो इससे पुरुष समाज का भी फायदा होगा। यानी स्त्रीवादी विचारकों, लेखकों, कार्यकर्ताओं और संगठनों से ये माँगें की जायें, तो उन्हें पुरुष वर्ग का भी समर्थन मिल सकता है। आखिर कौन पुरुष नहीं चाहेगा कि उसका सामना एक बीमार

सी, थकी हुई और ऊर्जा रहित स्त्री की बजाय स्वस्थ, ऊर्जावान और स्फूर्तिमय स्त्री से हो? इस माँग से भारत में स्त्री एकता जितनी मजबूत हो सकती है, उतनी और किसी माँग से नहीं। तब गाँव की अनपढ़ स्त्रियाँ भी सोचेंगी कि हमारी पढ़ी-लिखी बहनों के स्वप्न में हमारे लिए भी जगह है। इसकी तुलना इस माँग से करके देखिए कि संसद और विधान सभाओं में स्त्रियों के लिए एक-तिहाई जगह आरक्षित होनी चाहिए, तो तुरंत पता चल जाएगा कि हमारी प्रबुद्ध स्त्रियाँ भारत के सामान्य यथार्थ से कितनी दूर खड़ी हैं। निवेदन है कि एक-तिहाई तो क्या, उससे ज्यादा स्थान हमारी स्त्रियाँ आगे बढ़ कर खुद ले लेंगी - आप पहले उन्हें दिन-रात की अनावश्यक मशक्कत से मुक्त तो कराइए।

यहाँ जो प्रतिपादित करने की कोशिश की जा रही है, उसके बारे में यह सोचा जा सकता है कि यह नारी आंदोलन को भटकाने की कोशिश है। स्त्री मुक्ति के ये चार औजार - नल का जल, रसोई गैस, वॉशिंग मशीन और फ्रिज - भारत की सभी स्त्रियों को उपलब्ध कराने में सौ साल भी लग सकते हैं। जब तक नौ मन तेल न हो, तब तक राधा अपना नाचना क्या स्थगित रखे? सच तो यह है कि अपनी तमाम विपन्नता में भी ऐसी स्त्रियाँ हो सकती हैं जो किसी की गुलामी करने के लिए राज़ी नहीं हैं और अपनी जिंदगी अपने ढंग से जीने के लिए प्रतिबद्ध हैं। हममें से हरएक की मुलाकात ऐसी स्त्री से हुई होगी। यह दिखाता है कि आदमी की आत्मा भौतिक परिस्थितियों की बंदी नहीं है। मन शरीर से ज्यादा शक्तिशाली होता है। लेकिन यह क्षमता एक असामान्य उपलब्धि है। जिनके पास यह क्षमता है, वे सभी की बधाई के पात्र हैं। लेकिन सामान्य व्यक्तियों से इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती। उन्हें इसके लिए बराबर उद्बुद्ध किया जाना चाहिए कि वे 'जहाँ हैं जैसे हैं' उसी परिवेश में अपने हकों के लिए संघर्ष करें और पुरुषवादी व्यवस्था के स्तर पर भी। लेकिन देश में दरिद्रता का जैसा फैलाव है और इस दरिद्रता के सूत्र जिस तरह पूरी व्यवस्था से जुड़े हुए हैं, उसे देखते हुए यह दिवा-स्वप्न ही है कि कोल्हू के बैल की तरह निर्धारित घेरे में लगातार श्रम करते रहने वाली स्त्रियाँ उन अन्यायों से संघर्ष करना तो छोड़िए - उन्हें संदर्भ के साथ ही समझ सकेंगी जिनका शिकार सिर्फ इसलिए होना पड़ रहा है कि उनका जन्म स्त्री के रूप में हुआ है। इसके लिए पहली शर्त यह है कि उन भौतिक परिस्थितियों को बदला जाये जो स्त्री चेतना को परिमित करती हैं। अभी नारीवाद के ज्यादातर स्वर स्त्री-पुरुष संबंध को पुनर्परिभाषित करने पर लगे हुए हैं। यह काम चलते रहना चाहिए। लेकिन भारतीय स्त्री और भारतीय पुरुष के भौतिक परिवेश को भी पुनर्परिभाषित करना होगा, ताकि संबंधों के नये और सभ्यतर रूप व्यापक तथा टिकाऊ हो सकें।

आजाद आत्माएँ आजाद शरीरों में ही रहती हैं।

नारी मुक्ति या नारी सशक्तिकरण

किशोर अग्रवाल

मानव के मन और मस्तिष्क में मुक्ति की कामना या मुक्त होने की चाह तभी जन्म लेती है जब वह स्वयं को बंधनों में बंधा हुआ अनुभव करता है। यूं तो आध्यात्मिक दृष्टि से यदि देखा जाए तो मनुष्य जन्म लेते ही सांसारिक बंधनों में बंध जाता है तथा पूरे जीवन इन्ही सांसारिक बंधनों तथा मोहमाया के जाल में फंसा रहता है और बड़े बड़े ज्ञानी संत, महात्मा मृत्यु के पश्चात मुक्ति अथवा मोक्ष की कामना ईश्वर से करते हैं। यदि भौतिकवादी दृष्टि से आम आदमी की दृष्टि से देखा जाए तो भी मनुष्य पैदा होते ही अनेक प्रकार के सामाजिक बंधनों व रीति रिवाजों से घिर जाता है। समाज में अनेक प्रकार के रिश्ते, नियम, जाति व कानून व्यक्ति को बांधे रखते हैं। किसी भी सभ्य समाज या देश के अपने कानून व नियम होते हैं तथा उस देश या समाज के लोग उन्हें सहजता से स्वीकार कर लेते हैं। कोई भी पुरुष या महिला इन बंधनों से मुक्त नहीं होता। जहाँ पर नारी एक बेटी, बहन, पत्नी, प्रेमिका या माँ के रूप में समाज में विभिन्न रिश्तों में बंधकर त्याग, ममता, प्रेम, वात्सल्य तथा समर्पण जैसी पवित्र मानवीय भावनाओं के वशीभूत होकर स्वाभिक रूप से अपना जीवन सहजता के साथ व्यतीत करती है तथा नारी होने पर गर्व अनुभव करती है वहीं पर पुरुष भी एक पुत्र, भाई, प्रेमी, पति व पिता के रूप में अपने पुरूषोचित स्वभाव के कारण अपनी पत्नी तथा पूरे परिवार का पालन करते हुए उसे सुरक्षा प्रदान करता है। भारतीय समाज में पुरुष व स्त्री गृहस्थी की गाड़ी के दो पहिये माने जाते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक व एक दूसरे के अन्योन्याश्रित होते हैं। एक दूसरे के बिना जीवन अपूर्ण माना जाता है। पुरुष यदि आकाश है ता स्त्री धरती। दोनों में से किसी एक के बिना सृष्टि की कल्पना ही बेकार है। अधिकांश सफल पुरूषों के पीछे किसी नारी का हाथ होता है और इसे वे स्वीकार भी करते हैं। भारतीय परिवेश में समाज में प्रत्येक रिश्ते की एक मर्यादा, एक गरिमा, एक उपयोगिता होती है जिसे व्यक्ति सहजता से बिना बाह्य दबाव के स्वतः ही निर्वाह करता है। इन रिश्तों के निर्वहन की प्रक्रिया में कहीं भी व्यक्ति स्वयं को बंधनों में जकड़ा मजबूर या विवश अनुभव नहीं करता है।

आधुनिक समाज में नारी मुक्ति या नारी सशक्तिकरण की जो अवधारणा प्रस्तुत की जाती है उसे गहराई से देखने की आवश्यकता है। सरसरी तौर पर देखने में दोनो अवधारणायें एक जैसी प्रतीत होती हैं किन्तु सूक्ष्मता से निरीक्षण करने पर अन्तर स्पष्ट दिखाई देता है। वर्तमान समय में नारी मुक्ति की बात ज्यादा प्रांसगिक नहीं लगती है। हाँ नारी सशक्तिकरण की बात या उसके लिए किये जा रहें प्रयास ज्यादा उचित, उपयोगी व सार्थक

हो सकते हैं। मध्य काल और वर्तमान काल में नारी की सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक परिस्थितियों में बहुत अन्तर आ चुका है।

नारी सशक्तिकरण के संदर्भ में मध्य युग तथा आधुनिक युग की मानसिकता में बहुत अन्तर है। नारी मुक्ति के सम्बन्ध में आधुनिक महिलाओं की सोच तीन प्रकार की दिखाई देती है - महिलाओं में एक वर्ग विशुद्ध नैतिकवादी ढंग से जीने में विश्वास करता है उसे, अपनी सामाजिक परिस्थिति से कोई असंतोष नहीं है न ही वह अपने को किसी बन्धन में अनुभव करता है अतः इस वर्ग को मुक्ति की कोई आवश्यकता या चाह प्रतीत नहीं होती।

दूसरा वर्ग ऐसी महिलाओं का है जो घर परिवार की चारदीवारी को लांघ कर अपने पैरों पर खड़ा होकर आत्मनिर्भर बन कर अपने स्वयं के बल पर सफलता के क्षितिज को छूने को तैयार हैं लेकिन यह वर्ग भी अपने परिजनों के सहयोग से अपनी सभ्यता व संस्कृति के दायरे में रहकर सामाजिक नियमों के अन्तर्गत ही आगे बढ़ने में विश्वास रखता है। तीसरा वर्ग ऐसी महिलाओं का है जो सभी नियमों, परम्पराओं तथा रीति रिवाजों को धता बताते हुए पूरी तरह से स्वच्छंद जीवन गुजारने में विश्वास रखती हैं तथा यह वर्ग पुरुष को सहयोगी न मानकर प्रतिद्वंदी के रूप में देखता है। इस वर्ग की महिलायें आधुनिक बनकर सभी नियम व कानून खुद बनाना चाहती हैं तथा व्यक्तिगत जीवन में अपनी स्वतन्त्रता में किसी का हस्तक्षेप सहन नहीं करती हैं। ये अपनी दैहिक आवश्यकताओं की पूर्ति को अपना स्वतन्त्र अधिकार मानती हैं और सामाजिक आर्थिक व राजनैतिक रूप से भी स्वयं निर्णय लेना चाहती हैं और पुरुषों पर निर्भर नहीं रहतीं।

भारत में नारी मुक्ति का मुद्दा कोई नया नहीं है। प्राचीन भारत में अनेक रूढ़ियां, परम्परायें, कुप्रथायें व अंधविश्वास प्रचलित थे जिन्होंने नारी को जकड़ रखा था तथा उसका उत्पीड़न होता था। समाज में सती प्रथा, बाल विवाह, पर्दा प्रथा, नारी को हेय समझा जाना, शिक्षा का अधिकार न होना ऐसी कुत्सित रूढ़ियां प्रचलित थी जिन्होंने नारी का जीवन नारकीय बना रखा था। तत्कालीन महापुरुषों व समाज सुधारकों ने इन कुरीतियों के खिलाफ समाज में अनेक आंदोलन किये, समाज का विरोध सहन किया किन्तु इन्हें समाप्त करने में सफलता अर्जित की। स्वामी विवेकानन्द, राजा राममोहन राय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी दयानन्द सरस्वती, ज्योतिबा फूले, सावित्री बाई, रमाबाई आदि ने स्त्रियों की दशा सुधारने, उन्हें समाज में पुरुषों के बराबर स्थान दिलाने, शिक्षा का अधिकार दिलाने, विधवा विवाह कराने, सती प्रथा का अन्त करने, बाल विवाह पर रोक लगाने तथा सम्पत्ति में महिलाओं को अधिकार दिलाने के लिए जो संघर्ष और आंदोलन किये उन्हें मुक्ति आंदोलन कहना उचित होगा।

गौतमबुद्ध ने अपने आश्रम में प्रथम बार महिलाओं को प्रवेश दिया। वेद-काल में जिस समाज में अगस्त, वशिष्ठ तथा विश्वामित्र आदि ऋषि रहते थे उसी समाज में लोपामुद्रा

अपने वैयक्तिक विचारों के लिए जानी गई। घोषा, सूर्या, विश्वतारा आदि महिला ऋषियों ने वेद मंत्रों की रचना की। उपनिषद काल में गार्गी, मैत्रेयी, अपाला आदि 17 ऋषियों ने औपनिषदिक विमर्श में भाग लिया। बौद्धकाल में शंकराचार्य को भारती ने परास्त किया। भक्तिकाल में मीरा के रूप में स्त्री ने पुरुष वर्ग पर प्रहार किया। कहा जा सकता है कि स्त्री मुक्ति की वह प्रथम हुंकार थी।

महात्मा गाँधी ने स्वतन्त्रता आंदोलन में स्त्रियों को घर की चारदीवारी से बाहर निकालकर देश की स्वाधीनता संग्राम से जोड़ा और आजादी के आंदोलन में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। यह एक प्रकार से घर परिवार और समाज की दकियानूसी परम्पराओं के खिलाफ राजनैतिक मुक्ति की शुरुआत थी। कस्तूरबा गाँधी, सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू, लक्ष्मी सहगल जैसी अनेक महिलायें इसकी मिसाल हैं। इतिहास में अनेको बार महिलाओं ने राजशाही में आगे बढ़कर पुरुषों के वर्चस्व को चुनौती देकर स्वयं को श्रेष्ठ सिद्ध किया है।

साहित्य में भी महिलाओं को स्वतन्त्रता प्रदान की गई। ये महिलायें बौद्धिक सामाजिक तथा वैचारिक स्तर पर न केवल पुरुषों से बहस या विचार विमर्श करती थीं अपितु स्वतन्त्र रूप से तमाम परम्परागत रूढ़ियों के खिलाफ जाकर निर्णय भी करती थीं। बंगाल में रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा रचित गीतांजली के गीतों पर स्वर साधने व नृत्य करने की शुरुआत महिलाओं ने की। बंगला साहित्य में शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय, श्रीकान्त व आशापूर्ण देवी ने कमला व लक्ष्मी को खड़ा किया वहीं पर उर्दू में इस्मत चुगताई और कुर्तुल एन हैदर ने नारी अस्मिता को पृथक पहचान दी। हिन्दी साहित्य में भगवती चरण वर्मा, जैनेन्द्र, अक्षय, रेणु, प्रभा खेतान, मैत्रेयी, तस्लीमा नसरीन आदि ने चित्रलेखा और मृणाल जैसी स्वच्छंद नायिकाओं को प्रस्तुत किया जो व्यक्तिगत एवं दैहिक निर्णय भी स्वयं लेती थीं। छायावादी युग में राष्ट्रीय आंदोलन के साथ महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के रूप में दो बदले नारी रूप मिलते हैं। महादेवी वर्मा ने खादी पहन गाँधी दर्शन को जीवन में उतारा और अपने गीतों में यत्र तत्र राष्ट्रीय मुक्ति की बात कही। सुभद्रा कुमारी चौहान की भी राष्ट्रीय आंदोलन में खुलकर भागीदारी रही। छायावाद के काल में ही सुमित्रा कुमारी सिन्हा व तारा पाण्डे के नाम आते हैं।

नारी सशक्तिकरण का मुद्दा भारत में 1975 से शुरू हुआ माना जा सकता है जब बर्लिन में भारतीय नारियों का एक दल प्रथम विश्वस्तरीय महिला सम्मेलन में भाग लेने गया। नारी सशक्तिकरण क्या है तथा इसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है ये प्रश्न एक दूसरे से जुड़े हैं तथा इनको उत्तर भी एक दूसरे से सम्बद्ध हैं।

नारी सशक्तिकरण के लिए आवश्यक है कि नारी को अपने जीवन में पूर्ण स्वतन्त्रता हो तथा वह स्वयं कर्ता हो, वह किसी की दया पर निर्भर न होकर आत्मनिर्भर बने, वह किसी की दासी, नौकरानी और उसकी अनुगामिनी न हो बल्कि वह पुरुष की सहभागिनी हो। पुरुष व स्त्री में लिंग के आधार पर कोई भेदभाव न हो, दोनों के लिए कार्य के अवसर तथा कार्यक्षेत्र समान हों, दोनों के लिए समान कानून व समान अधिकार हों। पुरुष स्त्री पर हिंसा का प्रयोग न कर सके।

इसके लिए स्त्रियों में व समाज में जागरूकता पैदा करना आवश्यक है। हम भारत में पश्चिम की नकल नहीं कर सकते क्योंकि वहाँ का समाज व्यक्ति केन्द्रित है तथा हमारे यहाँ परिवार केन्द्रित समाज है। यहाँ पर स्त्री स्वयं को परिवार व समाज का एक अभिन्न अंग मानती है। आज भारत में स्त्री पुरुष समानता बहुत हद तक स्थापित हो चुकी है। पूरे देश में महिलाओं को वोट देने तथा चुनाव लड़ने का अधिकार पुरुषों के समान है। आज कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जहाँ पर महिलाओं ने अपना पृथक अस्तित्व न बना लिया हो।

नारी सशक्तिकरण के लिए सबसे बड़ी चुनौती नारियों में इच्छा शक्ति को जगाना है। इसके बाद नारी, स्वास्थ्य, वैचारिकता, शिक्षा, आर्थिक स्वालम्बन, आत्म निर्णय, बहादुरी, साहस व शौर्य के गुणों की स्वयमेव स्वामिनी बन जायेगी।

वर्तमान में नारी मुक्ति की बात करना ज्यादा प्रासंगिक व सार्थक नहीं है। नारी सशक्तिकरण के लिए प्रयास जारी रहने चाहिए। संविधान में नारी पुरुष समानता के तथा नारी उत्पीड़न को रोकने के लिए कानून हैं किन्तु केवल कानून बनाना पर्याप्त नहीं है, इसके लिए समाज में जागरूकता लाना आवश्यक है।

भारत विकास परिषद् पुरुष व स्त्री में कोई विभेद नहीं करती। दोनों को ही परिषद् के संविधान में समान अधिकार प्राप्त हैं। स्त्री किसी भी पद पर चुनाव लड़कर उस पर कार्य कर सकती है। किसी भी चुनाव में भाग लेकर मतदान कर सकती है। किसी भी विषय पर स्वतन्त्र रूप से विचार प्रकट कर सकती है। परिषद् में नारी को सम्मानित व बराबरी का दर्जा प्राप्त है। प्रत्येक कार्य पुरुष व नारी कन्धे से कन्धा मिलाकर पूर्ण समतावादी दृष्टिकोण से करते हैं।

‘विज्ञान लोक’ बुलन्दशहर (उ.प्र.)

पर्यावरण-रक्षा में नारी का योगदान

प्रतिभा आर्य

अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवात्मा
हिमालयो नाम नगाधिराजः।
पूर्वापरौ तोयनिधि वगाह्य स्थितः
पृथिव्या इन मानदण्डः॥

- कुमार सम्भवम्

उत्तर दिशा में पर्वतों का महान राजा हिमालय है जो अपने दिव्य रूप में पृथ्वी नापनेवाले दण्ड के समान पूर्व पश्चिमी समुद्रों के बीच स्थित है।

आज गौरवशाली हिमालय की बात हो रही है, केवल गढ़वाल या कुमायूँ की नहीं, सुदूर पूर्व में अरुणाचल से लेकर पश्चिम में लद्दाख कश्मीर तक फैले इस विस्तृत पर्वतमाला की बात हो रही है। विभिन्न प्रान्तों में विभाजित, विविध संस्कृतियों को समेटे, जहाँ एक ओर कामाख्या देवी है तो दूसरी ओर नन्दादेवी और वैष्णवी देवी। बद्रीविशाल है तो स्वयंभू अमरनाथ भी है। भला संसार में और ऐसी कौन सी पर्वतमाला है जो इतनी सारी विविधताओं का जमघट हो। इसकी हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखला, सुन्दर ऊँचे वृक्षों से भरे घने वन, गंगा जैसी पवित्रतम नदी जो अपने आप में सभ्यता का इतिहास है। वन, दुर्लभ औषधियाँ, हरी भरी मखमली घास वाली फूलों से भरी घाटियाँ और सुन्दर प्राकृतिक दृश्यों के बीच स्थित हमारी आस्थाओं के केन्द्र तीर्थस्थल और सबसे बढ़कर यहाँ का सरल किन्तु परिश्रमी समाज।

हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाओं से नीचे उतरकर वृक्षों के घने जंगल मेघालय से लेकर कश्मीर तक फैले हुए हैं। पहाड़ का जीवन इन्हीं वृक्षों पर निर्भर है एवं इन्हीं के कारण सुरक्षित है। आज उनके लगातार कटने के कारण यह जीवन असुरक्षित हो चला है। भारतीय दर्शन के मूल में हमारी संवेदनशीलता प्रमुख है। वनस्पतियों के लिए स्कन्दपुराण में एक अत्यन्त सुन्दर श्लोक आता है जो हमारे दार्शनिक चिन्तन, मानसिकता व आस्था की ओर संकेत करता है-

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजा वसूनि च।
ब्रह्म प्रज्ञां च मेधां च, त्वं नो देहि वनस्पते।

हे वनस्पते! मुझे आयु तेज बल सन्तति, पशुधन, वैदिक ज्ञान, प्रज्ञा और धारणा-शक्ति प्रदान करें। जिस वनस्पति से हम इतना कुछ पाने की आकांक्षा रखते हैं, वहाँ फिर शंका क्यों होने लग पड़ी है? परन्तु निरन्तर हो रहे भूस्खलन ने हमें यह सोचने पर बाध्य कर दिया है कि कहीं-न-कहीं गड़बड़ अवश्य है और यह गड़बड़ है हमारी मानसिकता में

आया बदलाव। प्रसिद्ध पर्यावरणविद् श्री जेराल्ड डयूरेंड ने कहा है, “ संरक्षण का अर्थ है सम्पूर्ण पृथ्वी की रक्षा, चाहे वे वृक्ष हों या पौधे पशु या फिर स्वयं मानव-जब मानव प्रकृति को नष्ट करता है तो उसी शाखा को काट रहा होता है जिस पर वह स्वयं बैठा है।”

जी हाँ...हमें पर्यावरण को एक विशाल परिपेक्ष्य में देखना है...क्योंकि जीवन के पाँचों तत्व क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर हैं। इन्हीं पंचभूतों से मिलकर यह शरीर है और यह केवल मानव पर ही लागू नहीं होता...पृथ्वी का नन्हें से नन्हा प्राणी, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, मछली आदि प्राणिमात्र इसमें आ जाते हैं परन्तु विज्ञान की प्रगति में जबसे मनुष्य ने केवल अपना सोचना शुरू कर दिया है उसी दिन से हमारे पर्यावरण का सन्तुलन बिगड़ गया है, हमारी हवा विषैली हो गई है, जल प्रदूषित हो गया है, पशु पक्षियों की कई प्रजातियाँ समाप्त के कगार पर हैं और आश्चर्य नहीं कि स्वयं मानव भी समाप्त के कगार पर आ जाए... दूर क्यों जाएँ, हिरोशिमा, में अणु बम का विस्फोट व भोपाल की गैस-त्रासदी असंवेदनशील वैज्ञानिक प्रगति का ही एक जीता-जागता नमूना है। एक ओर वैदिक युगीन मानव था जो पृथ्वी खोदते समय कहता था, जिस पृथ्वी पर देवता यज्ञ करते हों उसको मेरे द्वारा कष्ट न पहुँचे-

पृथिवि देवयजन्याषध्यास्ते

मूलं मा हिंसिषम्॥

- यजुर्वेद

आज मानव लालच में आकर अंधाधुंध वृक्ष काट रहा है, फैक्टरियों से दिन रात विषैली गैसें, धुँआ और जल प्रवाहित हो रहा है। मनुष्य तो इतना लालची हो गया है कि अशुद्ध पानी को भी मिनरल वाटर के नाम से बेच रहा है। हमारी आस्था का केन्द्र हमारे तीर्थस्थल पर्यटन स्थल बन गए हैं। दूर क्यों जाएँ, हरिद्वार में आनेवाले हजारों धनाढ्य लोग हैं जो कार द्वारा सप्ताहान्त बिताने आते हैं और अपने पीछे पॉलीथीन के थैले, खाने के खाली पैकेट, प्लास्टिक की खाली बोतलें आदि गन्दगी के रूप में फेंक जाते हैं। हमने विदेशियों से ‘फेंक दो’ - *disposable* की संस्कृति अपना ली है। प्रयोग करो, फेंक दो। हर वस्तु अब छोटे-छोटे पैकेट में बिकने लग गई है। चाहे शैम्पू, साबुन, सोंफ, नमकीन, सुपारी आदि क्यों न हो...दुकानदार भी इन छोटे-छोटे पैकेटों की रंगीन चमकदार झालर बन्दनवार सी सजा देते हैं और न गलनेवाले कूड़े-कर्कट की समस्या को और बढ़ा देते हैं। नालियाँ बन्द हो रही हैं और पर्वतों के सुन्दर दृश्यों के बीच फैले हुए, उड़ते हुए ये लिफाफे, खाली बोतलें वातावरण को प्रदूषित कर रहे हैं। सबसे पहले हमें इस समस्या पर गम्भीरतापूर्वक विचार करना होगा। गंगोत्री से लेकर दूरदराज के गाँवों में, पर्वतों में, घाटियों में फैले इस न गलनेवाले कूड़े का निस्तारण कैसे होगा? पॉलीथीन का राक्षस रक्तबीज बन गया है। इसका अन्त कैसे किया जाएगा?

पर्वतों में महिलाओं के जीवन का आधा भाग ईंधन के लिए लकड़ी एकत्र करने में बीत जाता है और पीठ पर बोझ ढोती ये महिलाएँ असमय ही बूढ़ी हो जाती हैं। हमें ईंधन का एक सुगम व सस्ता विकल्प खोजना होगा। दूर-दराज के गाँवों में ईंधन सुलभ करना होगा। मैं इस बात से बिल्कुल भी सहमत नहीं हूँ कि पर्वतों में ईंधन के लिए जंगल काटे जाते हैं। पतली दरांती लेकर चलने वाली यह महिलाएँ उनसे पतली सूखी लकड़ियाँ तो काट सकती हैं परन्तु जंगल नहीं... ये तो वास्तव में जंगल के ठेकेदारों द्वारा लगाया गया गलत इल्जाम है जो पचास पेड़ों का ठेका लेकर पूरा-का-पूरा जंगल रातों रात काट लेते हैं। यहाँ स्वीडन की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगी जहाँ कागज का व्यवसाय प्रमुख है। वहाँ पेड़ काटने का ठेका मिलने पर ठेकेदार केवल निश्चित स्थान से निश्चित वृक्ष ही काटेगा परन्तु साथ ही उसे दुगुने वृक्ष लगाने का भरोसा दिलाना होगा और पाँच वर्ष तक उनकी देखभाल करनी होगी अन्यथा उसका ठेका निरस्त कर दिया जाता है व भविष्य के लिए उसे ठेका नहीं मिलता है। हमारे यहाँ भी लकड़ी के जंगलों के लिए कुछ नियम होने चाहिए। अंधाधुंध वृक्षों को काटने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए, चाहे सरकार को धन का लाभ क्यों न हो। मैं 'चिपको आंदोलन' से जुड़ी उन सभी महिलाओं का स्मरण दिलाते हुए उनका अभिनन्दन करना चाहूँगी जिन्होंने वृक्षों के साथ लिपटकर अपने ममत्व भरे आँचल में उन्हें समेट कर उनकी रक्षा की। वह सचमुच नारी शक्ति का रूप है, वह क्या नहीं कर सकती, वृक्षों को सन्तानवत् पालने की घटना आज की नहीं कविकुल गुरु कालिदास के समय से चली आ रही है। शकुन्तला ने नवमल्लिका का सन्तानवत् पालन किया था। पार्वती ने देवदारु के वृक्ष को पुत्र बना रखा था। जिस जिस देश में तुलसी मैया के रूप में पूजित रही, पीपल, बरगद, आम, बिल्व, आँवला, अशोक आदि वृक्षों की अलग-अलग रूपों में पूजा होती रही है। वृक्ष को काटना तो यहाँ ब्रह्महत्या के बराबर माना जाता रहा। 'असिपत्र वनं याति वनच्छेदी वृथैव च'। सत्य यह है कि जंगलों की कटाई के गुनाहगार एक नहीं बहुत हैं और अन्दर ही इसे घुन की तरह खा रहे हैं।

हमारे पर्वतों की एक और समस्या जल की है। यह सुनने में विचित्र लगता है, परन्तु पर्वतीय क्षेत्रों में पीने के पानी के लिए महिलाओं को दूर तक जाना पड़ता है। इस सन्दर्भ में मुझे पौढ़ी गढ़वाल के श्री सकलानी याद आते हैं जिन्होंने पानी के छोटे-छोटे स्रोतों का जिन्हें स्थानीय भाषा में 'नौला' कहते हैं, पत्थरों की सहायता से रोक कर पानी भण्डारण का प्रबन्ध किया है और वे अपने क्षेत्र में आसपास के सभी नौलों का प्रवाह नियंत्रित करके बिना धन व्यय किए अपने श्रम द्वारा ही उन्हें स्वयं बनाते व दूसरों की सहायता करते हैं। जल संग्रहण द्वारा पशुओं व दैनिक कार्यों के लिए यह पानी बहुत ही महत्वपूर्ण है। हमारी पुण्य सलिला गंगा-गंगोत्री से ही प्रदूषित होने लग गई है। स्वामी तपोवन की दो पंक्तियाँ याद आ रही हैं जो उन्होंने गंगा माँ की स्तुति में कहा है-

*मलिनं मलिनं चित्तमत्यन्तमलिनं शुभे
कुतो न कुरूपे दृष्टिं मयि सर्वमलापहाम्॥*

हे देवी पुण्यात्मा! मेरा चित्त अत्यन्त मलिन हो गया। तुम अपनी दृष्टि से मुझे पवित्र क्यों नहीं कर देतीं?

पुण्य सलिला गंगा मैया वर्षों से हमारी मलिनता का बोझ ढोते-ढोते स्वयं ही मलिन होती जा रही है। शहरों के सीवर, घरों का कूड़ा कर्कट, आधे जले शव आदि सब इसी पवित्र मानी जाने वाली नदी में समा रहे हैं। पापनाशिनी गंगा हमारे द्वारा फैलाई गंदगी को बहाने में भी असमर्थ होती जा रही है। हमें यह निश्चय करना होगा कि जल स्रोतों के समीप किसी प्रकार की गंदगी न डाली जाए। सबसे महत्वपूर्ण तो आनेवाले पर्यटकों के लिए कठोर नियम बनने चाहिए। जिस प्रकार मन्दिर में जूते पहन कर जाना अनुचित है उसी प्रकार जल के किनारे गंदगी फेंकना, सीवर लाईन को सीधे नदियों में जोड़ना व शव चाहे मनुष्य का हो या पशु का, जल में प्रवाहित नहीं होना चाहिए। न गलने वाला पॉलीथीन, लिफाफे आदि का यहाँ प्रतिबन्ध ही नहीं बहिष्कार होना चाहिए। पर्वतीय क्षेत्र की महिलाएँ सरलता के साथ शक्ति, दृढ़ता, कर्मठता और परिश्रम का ज्वलन्त प्रतीक रही हैं, चाहे शराबबन्दी का आंदोलन हो या फिर चिपको अथवा वृक्षारोपण का, महिलाएँ आगे बढ़कर आई हैं। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, उत्तराखंड प्रदेश के निर्माण में इन महिलाओं के बलिदान जुड़े हुए हैं। मैं इस ओर ध्यान दिलाना चाहती हूँ कि पर्वतीय क्षेत्रों की समस्याएँ चाहे मेघालय में हो या उत्तराखंड अथवा लद्दाख में, लगभग एक सी हैं और सबसे बढ़कर एक बात की समानता सब में है, कर्मठता व परिश्रम। पर्यावरण रक्षार्थ में पुरोहित का कार्य भी स्त्रियों को ही सम्भालना होगा। मुझे विश्वास है कि प्रदूषण से हिमालय की रक्षा महिलाओं द्वारा ही सम्भव है।

अथर्ववेद में कहा गया है- माता भूमि पुत्रोऽम् पृथिव्या॥ अर्थात् धरती हमारी माता है और हम उनकी सन्तान... क्या यही सन्तान का धर्म है कि हम उसे प्रदूषित कर दें। हिमालय हमारी शान है, हमारी आस्थाओं व संस्कृति का केन्द्र है। उसकी धरती, जल, वायु, आकाश, वृक्ष, जीव-जन्तु सभी को हमें प्रदूषण से बचाना होगा। उसका नैसर्गिक सौन्दर्य वापिस लाना होगा। इसके लिए फिर महिलाओं को ही आगे आना होगा। शक्ति स्वरूप नारी ही हिमालय की रक्षा कर सकती है।

40, सिविल लाईन्स,
रुड़की-247667 (उत्तरांचल)

“जब स्त्रियों ने इतिहास रचा” (पुस्तक की लेखिका कुसुम त्रिपाठी हैं।)

राजेन्द्र कुमार

यह पुस्तक दो मुख्य उद्देश्यों को ध्यान में रख कर लिखी गई है। लेखिका का मत है कि पुरुष रचित इतिहास में स्त्रियों के योगदान को जानबूझ कर अनदेखा किया गया है। अतः उन्होंने अतीत के पन्नों से उन सभी आन्दोलनों एवं घटनाओं को बटोरा है जिनमें स्त्रियों ने अहम भूमिका निभाई है। दूसरे वे उन व्यक्तियों, संस्थाओं एवं बुद्धिजीवियों को एक तीखा उत्तर देना चाहती हैं जिनका विचार है कि नारी चेतना की जाग्रति आधुनिक विकास के साथ साथ पश्चिमी प्रभाव से आई है। इसी कारण उन्होंने एक के बाद एक जुझारू स्त्रियों के नाम तथ्य व घटनाओं आदि के आँकड़े देकर सिद्ध किया है कि आज के विकास युग से बहुत पहले दलित व आदिवासी स्त्रियों ने नारी मुक्ति के लिए संघर्ष किया है।

इस पुस्तक की लेखिका ने स्त्रियों की राजनीतिक एवं सामाजिक आन्दोलन में भागीदारी को तीन भागों में विभाजित किया है। पहला जमीनी सच्चाई से जुड़े मुद्दों को लेकर आदिवासी, किसान एवं कामगार महिलाओं के आन्दोलन, दूसरे अल्पसंख्यक वर्ग की नारियों के पर्सनल लॉ के विरोध में किये गये आन्दोलन तथा अंतिम राष्ट्रीयता के प्रश्न पर उठे आन्दोलन।

पहले प्रकार के आन्दोलन में लेखिका ने बोधगया आंदोलन, श्री काकुलम आन्दोलन, वेभागा आन्दोलन, विप्लव महिला संघम तथा इसी प्रकार के अन्य अर्थात् बलात्कार, घरेलू हिंसा, दहेज तथा कन्या भ्रूण हत्या आदि मामलों से जुड़े आन्दोलनों को उठाया है व तत्सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख किया है। शराब का विरोध सभी आन्दोलनों में समान रूप से दिखाई देता है। दण्डकारण्य के आदिवासी इलाकों में महिलाओं के केड्डे बनाने की प्रथा थी। इस प्रथा के अनुसार शराब के नशे में यदि पिता बेटी को किसी को देने का वचन दे दे तो लड़की को उसके घर पत्नी के रूप में जाना पड़ता था किन्तु यदि वह पुरुष उसे स्वीकार न करे तो लौटने को बाध्य वह लड़की केड्डे कहलाती थी। इसके अलावा उनमें नरबलि की प्रथा व जादू टोना भी चलता था। आदिवासी महिलाओं ने इस कुप्रथाओं का जोरशोर से विरोध किया।

दूसरे प्रकार के आन्दोलन में महाराष्ट्र के 1968 तथा 1978 में हुए मुस्लिम महिलाओं के आन्दोलनों को प्रस्तुत किया गया है। इनके माध्यम से मुस्लिम स्त्रियों ने हिन्दू स्त्रियों को दिये जाने वाली कानूनी अधिकारों की मांग करते हुए सौतबन्दी तथा तलाकुलबैन पर पाबन्दी लगाने की पैरवी की। इस सम्बन्ध में लेखिका द्वारा प्रकट इन विचारों से सहमत

होना उचित होगा कि शासन द्वारा इसमें सहयोग करने के स्थान पर यह कहना कि इस सम्बन्ध में कानून बनाने के लिए पहले मुस्लिमों का लोकमत तैयार करना आवश्यक है, उचित नहीं था।

तीसरी प्रकार का स्त्री आन्दोलन राष्ट्रीयता के प्रश्न पर उठे आन्दोलन से है। इसके अन्दर लेखिका ने स्त्रियों द्वारा चलाए गये संघर्ष कथा कहने के स्थान पर स्त्रियों पर किए जाने वाले अत्याचार व उनके दैहिक शोषण का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। लेखिका के अनुसार आतंकवादियों से स्त्रियाँ उतनी शोषित व अपमानित नहीं हुईं जितनी सेना व पुलिस द्वारा किये गये बलात्कार के आतंक से त्रस्त हुईं हैं। मुस्लिम स्त्रियों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन विशेष रूप से मार्मिक है।

इस प्रकार लेखिका ने स्त्रियों से सम्बन्धित आन्दोलनों के आंकड़ों को प्रस्तुत करने में जो परिश्रम किया है वह प्रशंसनीय है। इसमें नारी की उपस्थिति दर्ज कराने के लिए वे प्रशंसा की पात्र हैं। किन्तु इन आन्दोलनों में कालखण्ड का उल्लेख करना वे प्रायः भूल गई हैं जिसके कारण अन्य आन्दोलनों के साथ उसके तारतम्य को लेकर अस्पष्टता बढ़ गई है।

पुस्तक की एक विशेषता यह है कि लेखिका ने लगभग प्रत्येक आन्दोलन व घटना के विषय में अपनी टिप्पणी दी है व अपनी राय प्रकट की है। सबसे महत्त्वपूर्ण राय परम्परागत इतिहास लेखन के विषय में है जिसमें स्त्री संघर्ष की कहानी की अनुपस्थिति है। लेखिका यह नहीं मानती कि यह किसी भूलवश अथवा तथ्यों की अनुपलब्धता के कारण हुआ है। उनका विचार है कि यह सब एक गहरे षड्यंत्र का परिणाम है। इस निष्कर्ष के सम्बन्ध में तर्क का अभाव उनके निष्कर्ष के खोखलेपन को दर्शाता है।

लेखिका के विचार से सावित्री बाई फुले व ताराबाई शिंदे जैसी क्रान्तिकारी महिलाओं के योगदान को विस्मृत करके इतिहास के पन्ने सरोजिनी नायडू, कमला नेहरू, राजकुमारी अमृत कौर आदि के नाम से भरना पितृसत्तात्मक व्यवस्था की मनोवृत्ति है। वे इसे दमनकारी मानती हैं। शासन की ओर से स्त्रियों के उत्थान के लिए महिला आयोग की स्थापना, महिला पुलिस दल का संगठन, स्त्री सम्बन्धी अध्ययन केन्द्रों की स्थापना आदि में भी लेखिका को षड्यंत्र की बू आती है। उनका विचार है कि ऊपर से यह सरकार के सकारात्मक कदम हैं किन्तु अन्ततः ये स्त्री विरोधी हैं तथा नारीवाद के दमन के प्रतीक हैं। वे मार्क्सवाद के प्रति निष्ठावान हैं। शायद इसी कारण वे भारतीय पारिवारिक सम्बन्धों एवं संस्कृति को पितृसत्तात्मक सामन्ती बताते हुए उसे तोड़कर एक जनवादी संस्कृति की स्थापना की बात करती हैं। लेखिका का मानना है कि हिन्दू धर्म की संस्कृति के अनुसार स्त्री पुरुषों के उपभोग का साधन है। इसी कारण वे इस संस्कृति का विरोध करती हैं। उनका मानना है कि जो लोग नारी में दया, क्षमा, सहनशीलता आदि के गुणों का बखान करते हैं वे वास्तव में नारी को मूर्ख बना रहे हैं। वास्तव में उन्होंने हिन्दू धर्म की संस्कृति को ठीक से समझा

नहीं है। वे स्त्री पुरुष की सह-अस्तित्व परक सकारात्मक सक्रियता से रहित किस प्रकार के सृष्टि व समाज की परिकल्पना कर रही हैं यह समझना कठिन है। उनके विचारों से सहमत नहीं हुआ जा सकता।

राजेन्द्र कुमार

2/254, विश्वास खण्ड
गोमती नगर, लखनऊ

सेवा का प्रतिफल भी मिलता है।

फ्लेमिंग नामक एक निर्धन अंग्रेज़ किसान ने एक लड़के को देखा जो कमर तक दलदल में फंसा हुआ था एवं बाहर निकलने के लिए संघर्ष कर रहा था। फ्लेमिंग ने उसे बचा लिया।

अगले दिन एक धनवान, संभ्रांत व्यक्ति फ्लेमिंग के पास आया और कहा “तुमने मेरे पुत्र की जीवन रक्षा की है। मैं तुम्हें कुछ पारितोषिक देना चाहता हूँ।” फ्लेमिंग ने उत्तर दिया “ यह मेरा कर्तव्य था। मैं इसके लिए कुछ नहीं लूँगा”।

पास ही फ्लेमिंग का पुत्र खड़ा हुआ था। धनी व्यक्ति ने पूछा, “ क्या यह तुम्हारा पुत्र है”। फ्लेमिंग ने हाँ में उत्तर दिया।

धनी व्यक्ति ने उसके पुत्र की पढ़ाई का उत्तरदायित्व ले लिया और कहा कि मैं इसे इतना योग्य बनाऊँगा कि इसका पिता इस पर गर्व कर सके।

उस धनी व्यक्ति का नाम लॉर्ड रैन्डल्फ चर्चिल था एवं दलदल में फंसे वाला उनका पुत्र सर विन्सटन चर्चिल के नाम से विख्यात हुआ।

निर्धन कृषक का बेटा सर एलेक्जेंडर फ्लेमिंग के नाम से प्रसिद्ध वैज्ञानिक बना जिसने पेंसलीन का अविष्कार किया।

एक बार सर विन्सटन चर्चिल न्युमोनिया की चपेट में आ गये एवं इसी पेंसलीन ने उनकी प्राण रक्षा की।

—संकलित

मेरी अध्यात्म यात्रा

स्व० लक्ष्मी मल सिंघवी

मैं अध्यात्म को ना तो एक अजूबा मानता हूँ, न ही उसे एक सार्वजनिक अवधारणा मानता हूँ। मेरे लिए अध्यात्म एक अत्यंत निजी और अंतरंग अनुभूति है। मैं अध्यात्म को एक विराट्, सुविशाल चैतन्य का पवित्र मंदिर मानता हूँ, सत्य की जीवन-यात्रा का संबल एवं पाथेय मानता हूँ और उसे मैं अपनी आत्मा के आलोक का एक दीपक समझता हूँ। मेरे लिए अध्यात्म का अर्थ है - सत्य का साक्षात्कार, सत्य का आग्रह, सत्य के लिए प्रतिबद्धता। मनुष्य के जीवन में अध्यात्म, ज्ञान एवं दर्शन चरित्र की त्रिवेणी के संगम का नाम है, ऐसा मेरा विनम्र अभिमत है।

अध्यात्म का गंतव्य और मंतव्य है शुद्ध चेतना मे अवगाहन, सत्य का साक्षात्कार। अध्यात्म मानव सभ्यताओं के इतिहास में मनुष्य को सत्य-निष्ठा और न्याय-निष्ठा की ओर प्रेरित करता रहा है। इसीलिए सारे धर्मों के प्रवाह जिस सागर में मिलते हैं, उसे मैं अध्यात्म का नाम देता हूँ।

अध्यात्म वास्तव में मनुष्य का एक सार्वभौम और शाश्वत धर्मशास्त्र है। संप्रदाय अलग-अलग होते हैं, किंतु सब संप्रदाय धर्म की अंतर्धारा और अमृत द्वारा एकसूत्र में समाहित किए जाते हैं। अध्यात्म के सत्य में लोक भी है और परलोक भी, मनोमय जगत भी है और समग्र संसार व हमारा पर्यावरण भी। इसीलिए मैं मानता हूँ कि अध्यात्म बुद्धि से परे होकर भी बुद्धि से अलग नहीं है। भावातीत होकर भी भाव-विभोर होने की क्षमता अध्यात्म में विराजमान है। मेरे अध्यात्म में बुद्धि और भावना, श्रद्धा और तर्क, ज्ञान और विज्ञान, दर्शन और प्रतिदर्शन समवेत होकर एक रसायन की सृष्टि करते हैं, जो सुकृत और सदाचार के आदर्शों को संचारित व प्रतिष्ठित करता है।

मैं मानता हूँ कि अध्यात्म हमारे लौकिक जीवन से अलग किसी एकाकी कोने में सुरक्षित कोई धरोहर नहीं है बल्कि वह एक जीवंत अनुभूति है, जिससे सृष्टि के साथ एकात्म भाव स्थापित होता है, मित्रता और सदाशयता का समीकरण स्थापित होता है। वैमनस्य से

मुक्ति मिलती है, अहंकार मर्यादित हो जाता है और जीवन में एक अद्भुत अनिर्वचनीय शुद्ध व प्रबुद्ध चेतना का आभास होता है। अध्यात्म की भूमिका में चिंतन भी है, मंथन भी है और उनकी दुविधाओं से मुक्ति भी है।

जब-जब कोई बड़ी समस्या मेरे सामने खड़ी हुई है, चाहे वह सार्वजनिक हो या निजी, मैंने यह प्रयत्न किया है कि मैं अपने भीतर अध्यात्म के मानसरोवर के जल से आचमन कर सकूँ। अध्यात्म एकाग्रता, आत्म-विस्मृति और समर्पण का एक क्षण है, विसर्जन की एक यात्रा है, और एक ऐसी प्रतीति है जो अदृश्य होकर अनुभवजन्य है। कस्तूरी मृग का आत्म-सौरभ हमारे अध्यात्म का एक सुंदर रूपक है, अध्यात्म वही अंतर्निहित सौरभ है।

पूजा पाठ और कर्मकांड अध्यात्म के आह्वान और जागरण का रास्ता अवश्य हैं वह परम सत्ता की अनुकंपा का प्रतिवेदन और प्रार्थना-पत्र भी हो सकता है; किंतु अगर हम कर्मकांड को अपनी शुद्ध और प्रबुद्ध चेतना का स्थानापन्न बनाना चाहें तो मेरी दृष्टि मे उस प्रक्रिया मे अध्यात्म न्यून हो जाता है। वेद में कहा गया है कि जो ऋचा को आत्मसात् नहीं करता और समझता ही नहीं, उसके लिए ऋचा क्या कर सकती है। इस संदर्भ में मुझे श्रमण आगम का एक प्रसंग याद आता है। कुछ कर्मकांडी ब्राह्मणों ने भगवान् महावीर से पूछा कि आप कैसे आर्य हैं कि आप के पास यज्ञ के उपकरण नहीं हैं, यज्ञ की अग्नि नहीं है, यज्ञ की वेदी नहीं है? आप किस प्रकार होम करते हैं? भगवान् महावीर अविरोध के शाश्वत साधक थे। उन्होंने बताया कि मेरी साधना ही मेरी अग्नि है, शुद्ध और निर्मल अध्यात्म का जल मेरे लिए प्रशस्त स्नान है, मेरे जीवन का कर्म मेरे यज्ञ की वेदी है और मेरा मन, वचन एवं काया ही इस यज्ञ की समिधा हैं। आर्य परंपरा के उस अराधक ने तब यह भी कहा कि पुरातन ऋषियों ने इसी प्रकार के प्रशस्त होम का विधान हमको दिया है। इसी सोच को लेकर हमारे देश में यह कहावत प्रचलित हो गई कि 'मन चंगा तो कठौती में गंगा'। मैं मानता हूँ कि भारतीय अध्यात्म की यह अनुपम और अद्वितीय उपलब्धि रही है कि वह किसी शास्त्र में कैद न रहकर जनजीवन की विरासत बन गई है।

लेखक भारत विकास परिषद् के राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं मुख्य संरक्षक थे।

Women empowerment through self-help

Prof. Arjun Y. Pangannavar

In rural India, the poorest among the poor are women. The women empowerment through self-help programme could help to prevent the feminization of poverty.

The Self-Help Group (SHG) is an informal organization of 10-20 persons from the homogeneous poorer section of the society. It is controlled and managed by the members. The regular saving contribution to corpus fund is the eligibility to join the SHG. The mutual trust is the spirit of the organization. It has its own set of rules and regulations. There it transparency and accountability in SHG transactions. The SHGs are formed by the promoters like Banks, NGOs and Government Departments such as Department of Women and Child Development etc. There are various categories of SHGs. Some are women SHGs and some are men SHGs. The present research study is concerned with women SHGs.

Some SHGs have bank linkage programmes and some other SHGs have developmental linkage programmes. There are direct and indirect SHG models. It depends upon the type of promoter.

To promote self-help and mutual help, savings, micro-enterprise, credit linkage with credit institutions etc. are the main objectives and functions of SHGs. The self-help groups are functioning as the agent of development at the grass-root level and the primary units in the development process of the country.

The SHGs empower women in various respects. They provide women access to economic resources. They enable women to participate in decision-making at every level on every financial and non-financial issue. They improve the socio-economic status of the women. They change women from housekeeper to organizer, manager and decision-maker.

The Self-Help Group movement has been initiated in India, with a view to facilitate poor rural women to avail bank credit. A pilot project

for micro credit by linking SHGs with banks has been launched by NABARD. Reserve Bank of India directed the commercial banks to actively participate in this linkage programme.

However the SHG movement initially started as micro-finance institution movement has now taken the form of women empowerment paradigm as a group approach to eradicate rural poverty. The constitutional support to socio-economic justice and the international obligations have encouraged India to endeavor to initiate the self-help movement in the country. In India, the number of SHGs has increased from 2122 in 1994-95 to 21.01 lacs in 2005-06. Meanwhile the number of SHGs having bank loans increased from 1502 to 4.83 lacs; the total amount of bank loans increased from Rs. 179 lacs to Rs. 3096.13 crores and the number of families' loan availed increased from 25534 to 7238835.

There is uneven geographical distribution of SHGs in the country. Andhra Pradesh alone has 30.5 percent of the total SHGs of the country. The lowest percentage i.e. 0.19 is in Punjab. The SHGs growth is very low in states like Assam, Bihar, Jharkhand, Madhya Pradesh and Rajasthan where the social environment is totally unfavorable to rural women empowerment. However 488 districts in all the states and Union Territories are covered under SHGs-bank linkage programmes having linkage with 444 banks including 44 commercial banks, 191 RRBs and 209 co-operative banks with the association of 2155 NGOs.

The Union Government has shifted its approach from minimal approach to integrated approach. So it established Micro Finance Development Fund with NABARD in 2000-01. Moreover the Government also allowed foreign investment in micro-credit field. In return SHGs have achieved the expected results in income and employment generation activities. They have organized productive activities and enhanced their savings and investment levels. They have empowered the rural poor women to some extent and enable them to cross the poverty line.

*The author is Head of the Department of Studies in
Economics, J.S.S. Arts, Science and Commerce College,
Gokak-Karnataka*

उदात्त उद्बोधन

-डा० धर्मवीर सेठी

ओ३म्

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति

तपांसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति

तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

-कठ. 2/15

यमाचार्य ने नचिकेता को कहा कि हे पुत्र! वह परमात्मा ओम् है जिसका वर्णन वेदादि शास्त्रों में किया गया है। जिस ओम् को जानने के लिए मुमुक्षु जन अनेक प्रकार की तपस्याओं को करते हैं और जिसको पाने के लिए यति लोग ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं।

कुलदीपक

प्रदोषे दीपकः चन्द्रः, प्रभाते दीपकः रविः।

त्रैलोके दीपकः धर्मः, सुपुत्रः कुलदीपकम्॥

रात्रि में जैसे चन्द्र दीपक बनता है, प्रातः काल में सूर्य और तीनों लोकों में जैसे धर्म वैसे ही परिवार का दीपक होता है सुपुत्र।

सन्त वाणी

क्षारं जलं वारिमुचः पिबन्ति, तदेव कृत्वा मधुरे वमन्ति।

सन्तस्तथा दुर्जनदुर्वचांसि पीत्वा च सूक्तानि समुदगिरन्ति॥

खारा पानी पीकर जैसे बादल मीठा जल ही बरसाते हैं वैसे ही सज्जन लोग दुर्जन के कटु वचनों को सुनकर मधुर वचन ही बोलते हैं।

नारी शक्ति

माता त्वमेव परिपोषयसे निजांके,

पुत्री त्वमेव पितरौ च कुलं पुनासि।

बध्नासि बान्धवकरं भगिनी त्वमेव,

नारी त्वमेव गृहिणी च गृहस्य लक्ष्मीः॥

हे नारी, माता के रूप में तुम्हीं इस विश्व को गर्भाधान से लेकर पालन-पोषण करती हुई धारण करती हो, पुत्री के रूप में तुम्हीं माता-पिता और कुल को पवित्र करती हो। बहन के रूप में तुम्हीं अपने भाई की कलाई पर राखी बांधती हो जो पवित्र स्नेह बन्धन का प्रतीक है और पत्नी के रूप में घर की साक्षात् शोभा सम्पत्ति भी तुम्हीं हो।

समय परकता

पुस्तकस्था तु या विद्या परहस्तगतं धनम्।
कार्यकाले समुत्पन्ने न सा विद्या न तद्धनम्॥

पुस्तक में रखा ज्ञान और दूसरे के हाथ में गया हुआ धन, प्रयोग का अवसर आने पर यदि प्राप्त नहीं होता तो उस विद्या और ऐसे धन का क्या लाभ?

अनर्थ से बचो

यौवनं, धन सम्पत्तिः प्रभुत्वम्, अविवेकिता।
एकैकम् अपि अनर्थाय किम यत्र चतुष्टयम्॥

यौवन, धन, प्रभुता और मूर्खता इनमें से एक भी सब अनर्थों के लिए पर्याप्त है, जहाँ ये चारों हो, वहाँ क्या होगा?

उद्यमशीलता

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

परिश्रम करने से ही कार्य में सफलता मिलती है, मात्र सोचने से नहीं। सोये हुए शेर के मुख में कभी भी हिरण नहीं आता।

मित्रता

सच्चरित्र मनुष्येण करणीयात्र मित्रता।
अयोग्येन च दात्रापि त्याज्या मैत्री कथञ्चन॥

उदात्त चरित्र वाले मनुष्य के साथ ही मित्रता करनी चाहिए। जो अयोग्य है वह चाहे कितना भी दानी क्यों न हो उसके साथ मैत्री की आवश्यकता नहीं।

शुचिता

सर्वेषाम् शौचानामर्थं शौचं परमं स्मृतम्।

सभी पवित्रताओं में अर्थ (धन) की पवित्रता ही विशिष्ट है।

..... शेष पृष्ठ 42 पर

धरती लोकतंत्र

वन्दना शिवा

प्रसिद्ध पर्यावरण विद एवं इस पृथ्वी के साधनों जैसे जल, वन, जड़ी बूटियों पर एकाधिकार जमाने की प्रवृत्तियों के विरुद्ध संघर्षशील महिला वन्दना शिवा ने एक नया शब्द गढ़ा है: धरती लोक तंत्र। इसका अर्थ है इस धरती की सम्पदा पर सबका समानाधिकार है एवं पेटेंट कराने, बड़े उद्योग खड़े करने एवं विकास के नाम पर निर्धनों, आदिवासियों एवं सामान्य जनो को इस सम्पदा से वंचित करने का अधिकार किसी को नहीं है। इसका सब उपयोग करें यही है सच्चा धरती लोक तंत्र।

सार्वजनिक वस्तुओं और सेवाओं का निजीकरण और गरीबों के जीवन की सहायक व्यवस्था का वस्तुकरण दोहरी चोरी है, जो गरीबों की आर्थिक और सांस्कृतिक दोनों तरह की सुरक्षा को समाप्त करती है। सुरक्षित आजीविका और पहचान से वंचित लाखों लोग उग्रवादी, आतंकवादी और रूढ़िवादी आंदोलनों में शामिल हो रहे हैं। ये आन्दोलन इसी के साथ-साथ अन्य लोगों को दुश्मन घोषित करते हैं। इस गलत पृथक्करण के परिणामस्वरूप विरोधात्मक आचरण होने लगता है। घेराबंदी और वैश्वीकरण के आर्थिक उपनिवेशीकरण से उग्रवाद और आतंकवाद का उदय होता है। आतंकवाद, उग्रवाद और जातीय सफाई और धार्मिक असहिष्णुता वैश्वीकरण से उत्पन्न अप्राकृतिक स्थिति है और धरती लोकतंत्र में उनके लिए कोई स्थान नहीं है।

घेरा या बाड़ा पृथक्ता या अलगाव की भावना पैदा करता है और यह अलगाव निगम वैश्वीकरण की छिपी लागत है। नीम, बासमती और गेहूं की जैव चोरी के विरुद्ध हमारे आंदोलन का उद्देश्य हमारी जैविक और बौद्धिक विरासत को सभी के उपभोग के लिए पुनः प्राप्त करना है। केरल राज्य के एक छोटे से गांव प्लाचीमाडा में विश्व की सबसे बड़ी कम्पनी कोका कोला के विरुद्ध एक आदिवासी महिला द्वारा शुरू किया गया आन्दोलन विकसित हो रहे धरती लोकतंत्र के मर्म में है।

नये बौद्धिक सम्पत्ति अधिकार जैविक, बौद्धिक और सामूहिक सम्पदा को घेरते अथवा सीमित करते हैं। निजीकरण पानी पर लोगों के अधिकारों को सीमित या समाप्त करता है। इस तरह प्रत्येक संजायती या समान सम्पदा को घेरने से लोग बेदखल होकर अपने अधिकारों से वंचित होते हैं। इससे अधिक लोग अभाव का शिकार होते हैं जबकि गिनती के लोगों का 'विकास' होता है। विस्थापन, इस्तेमाल के बाद फैंकने का रूप ले लेता है और अपने सबसे कठोर रूप में, प्रेरित कमी या प्रभाव जीवित रहने के अधिकार को वंचित करने का रूप ले लेती है। जैसे जनन विज्ञान की सहायता से परिवर्तित बीज और लिंग चयनित गर्भपात

का विस्तार होता है लोगों के विशाल समूह-विशेष रूप से छोटे किसान और औरतें लुप्त होने लगती हैं। इस तरह लुप्त होने वाले लोगों की श्रेणी और दर नव उदार निगम वैश्वीकरण की शक्तिओं द्वारा धकेले गये 'आर्थिक विकास' के अनुपात में होते हैं।

मैंने इस परियोजना को धरती लोकतंत्र नाम दिया है। यह हमारी स्वसंगठित क्षमता, हमारी धरती की पहचान, हमारी बहुलता और विविधता पर आधारित है। धरती लोकतंत्र न केवल मनुष्यों के भाग्य और कल्याण की, बल्कि सभी जीवों की चिन्ता करता है। धरती लोकतंत्र का संबंध केवल अगले विरोध अथवा अगले विश्व समाज फोरम तक नहीं है; उसकी चिन्ता इस बारे में भी है कि हम इस बीच क्या करते हैं। वह इस ओर भी ध्यान देता है कि हमारे दैनिक जीवन में हमारी दैनिक वास्तविकताओं में वैश्वीकरण का क्या प्रभाव पड़ रहा है और वह स्थानीय परिवर्तन करके विश्व परिवर्तनों को सुगम बनाता है। ये परिवर्तन मामूली लग सकते हैं, लेकिन उनका प्रभाव दूरगामी होता है-वे प्रकृति के विकास और मानव क्षमता के बारे में हैं; वे हिंसा के विभिन्न दुश्चक्रों से निकलकर, जिसमें आत्मघाती संस्कृतियाँ आत्मघाती अर्थव्यवस्थाएं और आत्मघाती राजनीति एक दूसरे का पोषण करती हैं, सृजनात्मक अहिंसा के नेक चक्र में पहुंचती हैं। यहां जीवन्त संस्कृतियाँ जीवन्त लोकतंत्र और जीवन्त अर्थव्यवस्थाओं का पोषण करती हैं।

धरती लोकतंत्र केवल एक विचार नहीं है। इसका निर्माण लोगों की बहुविध और विविध आदतों से होता है, जो अपनी संजायती अथवा सामूहिक सम्पदा, अपने संसाधनों, अपनी जीविका, अपनी स्वतंत्रता, अपनी गरिमा, अपनी पहचान और अपनी शान्ति को फिर से प्राप्त करती हैं, जबकि ये आदतें, गतिविधियाँ और कार्य बहुमुखी और बहुविध हैं। मैंने उन समूहों की पहचान करने का प्रयास किया है जो जीवन्त लोकतंत्र, जीवन्त संस्कृतियों और जीवन्त अर्थव्यवस्थाओं के विचारों को पेश करते हैं और मिलकर धरती लोकतंत्र का निर्माण करते हैं। अर्थव्यवस्था, राजनीति, संस्कृति एक दूसरे से पृथक नहीं हैं। इसलिए जीवन्त अर्थव्यवस्थाओं, जीवन्त संस्कृतियों और जीवन्त लोकतंत्र का उदय होना सामूहिक प्रयास की प्रक्रिया है।

जीवन्त अर्थव्यवस्थाएं वे प्रक्रियाएं और स्थान हैं, जहां धरती के संसाधन सबको न्यायपूर्ण तरीके से भोजन और पानी की आवश्यकता पूरी करने और सार्थक जीविका उपलब्ध कराने के लिए दिए जाते हैं। धरती लोकतंत्र इस चेतना से विकसित होता है कि यहाँ हम स्थानीय साधनों से जीवन यापन करते हैं।

हमारा सम्पूर्ण विश्व के साथ और वास्तव में सम्पूर्ण ब्रह्मांड के साथ संबंध है। हम अपना वैश्वीकरण पारिस्थितिक प्रक्रिया और दया एवं एकता के बंधनों पर आधारित करते हैं, पूंजी और वित्त अथवा सामान और सेवाओं के आवागमन पर नहीं। एक वैश्विक अर्थव्यवस्था, जो पारिस्थितिक सीमाओं का ध्यान रखती है उसे अनिवार्य रूप से प्राकृतिक संसाधनों और

मनुष्यों की बरबादी रोकने के लिए स्थानीय उत्पादन करना होगा। केवल पारिस्थितिक आधार पर निर्मित अर्थव्यवस्थाएं जो सभी के लिए जीवन यापन के साधन और समृद्धि उपलब्ध कराती हैं जीवन्त अर्थव्यवस्थाएं हो सकती हैं। हमारी अर्थव्यवस्थाओं का हिसाब त्रैमासिक काम के आधार पर या राजनीतिज्ञों के चार या पांच वर्ष के परिपेक्ष्य में नहीं बनाया जाता। हम धरती पर विकसित हो रहे समस्त जीवों की क्षमता पर विचार करते हैं और अपने घरों, समुदाय और धरती के जीवन में मानव कल्याण को विशेष महत्व देते हैं। पारिस्थितिक सुरक्षा हमारी सबसे बुनियादी सुरक्षा है; पारिस्थितिक पहचान हमारी मूलभूत पहचान है। हम जो भोजन खाते हैं, जो पानी पीते हैं, हवा जिसमें हम सांस लेते हैं उन पर फिर से लोकतांत्रिक नियंत्रण प्राप्त करना और अपना पारिस्थितिक अस्तित्व बनाए रखना हमारी स्वतंत्रता के लिए आवश्यक परियोजना है।

(वन्दना शिवा वैकल्पिक नोबेल पुरस्कार से सम्मानित, अनेक पुस्तकों की लेखिका, प्रमुख चिन्तक और पर्यावरणविद हैं।)

.....39 पृष्ठ का शेष

परोपकार

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।

परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

वृक्ष दूसरों के लिए ही फल देते हैं, नदियाँ पर-उपकार के लिए ही बहती हैं, गऊएँ दूसरों के हित के लिए ही दूध देती हैं, अतः मनुष्य-शरीर मात्र परोपकार के लिए ही बना है।

समय लाभ

प्रथमे नार्जिता विद्या, द्वितीये नार्जितं धनम्।

तृतीये नार्जितं पुण्यम्, चतुर्थे किं करिष्यसि॥

जीवन के प्रथम काल में विद्या अर्जित नहीं की, द्वितीय में धन नहीं कमाया, तृतीय में पुण्य अर्जित नहीं किया, तो ऐसा मनुष्य अन्तिम अवस्था में क्या करेगा?

जन्म-मरण

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च।

तस्मादपरिहार्यंऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

हे अर्जुन! जो संसार में जन्म लेता है उसका मरना भी निश्चित है और जो मरता है उसका फिर से जन्म होना भी निश्चित होता है। यह ईश्वरीय नियम है। इससे कोई भी व्यक्ति बच नहीं सकता। इसलिए इस अवश्यमभावी प्राकृतिक नियम पर तेरा शोक करना व्यर्थ है। अतः उठो और इस धार्मिक युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

-‘वरोप्यम्’

ए-1055, सुशांत लोक गुरुग्राम

चिन्ताओं से डर कैसा

- डॉ० प्रणव पाण्ड्या

जीवन को एक प्रकार का खेल समझिए। खिलाड़ी की तरह पार्ट अदा करिए और पल्ला झाड़ कर अलग हो जाइए। इस वैराग्य, निष्काम कर्म एवं अनासक्ति की योग शास्त्र में बार-बार शिक्षा दी गयी है। यह कोई अव्यावहारिक या काल्पनिक विषय नहीं है, वरन् कर्म शील मनुष्यों का जीवन मन्त्र है। जिन लोगों पर अत्यन्त कठोर उत्तरदायित्व रहते हैं, जिनके ऊपर असंख्य जनता के भाग्य के निर्माण का भार है, उनके सामने पग-पग पर बड़े बड़े कठिनतम पेचीदा, दुरूह और घबरा देने वाले प्रश्न आते रहते हैं। कितनी पेचीदा गुत्थियाँ सुलझानी पड़ती हैं, कितने नित नये संघर्षों का सामना करना पड़ता है, पर वे अपने काम को भली प्रकार करते हैं, न तो बीमार पड़ते हैं, न बेचैन होते हैं, न घबराते हैं। रात को पूरी नींद लेते हैं, आमोद-प्रमोद में भाग लेते हैं, हँसते खेलते हैं, उत्सव भोजों में शरीक होते हैं।

एक हम हैं, मामूली सी दो चार कठिनाइयाँ सामने आने पर घबरा जाते हैं, चिन्ता के मारे बेचैन बने रहते हैं। वस्तुतः यह मानसिक कमजोरी है, आत्मबल का अभाव है, नास्तिकता का चिन्ह है। इससे बचना चाहिए, क्योंकि बेचैन मस्तिष्क ठीक बात सोच नहीं सकता एवं उसमें उचित मार्ग ढूँढने योग्य क्षमता नहीं रहती। आपत्ति से छुटकारा पाने के उपाय तलाश करने के लिए गंभीर, स्थिर और शांत चित्त रहने की आवश्यकता है। पर उसे पहले ही खो दिया जाय, तो जल्दबाजी में सिर्फ ऐसे उथले और अनुचित उपाय सूझ पड़ते हैं, जो कठिनाई को और भी अधिक बढ़ाने वाले होते हैं।

कार्य की अधिकता, असुविधा या चिन्ता का कारण उपस्थित होने पर आप उसको सुलझाने का प्रयत्न कीजिए। इनमें सबसे प्रथम प्रयत्न यह है कि मानसिक संतुलन को कायम रखिए, चित्त की स्थिरता और धैर्य को नष्ट न होने दीजिए। घबराहट तीन चौथाई शक्ति को बर्बाद कर देती है, फिर विपत्ति से लड़ने के लिए एक चौथाई भाग ही शेष बचता है। इतने स्वल्प साधन की सहायता से उस भारी बोझ को उठाना सरल नहीं रहता। कहते हैं कि विपत्ति अकेली नहीं आती। उसके पीछे और भी बहुत से झंझट बँधे चले आते हैं। कारण यह है कि चिन्ता से घबराया हुआ आदमी अपनी मानसिक स्वस्थता खो देता है और जल्दबाजी में इस प्रकार का रवैया अख्तियार करता है, जिसके कारण दूसरे काम भी बिगड़ते चले जाते हैं तथा एक के बाद दूसरे अनिष्ट उत्पन्न होते जाते हैं। यदि मानसिक स्थिति पर काबू रखा जाय, चिन्ता और बेचैनी से घबराया न जाया जाय, तो मूल कठिनाई भी हल हो सकती है और नई योजनाएँ भी बन सकती हैं।

ईश्वर की इच्छा, प्रकृति की प्रेरणा, संचित संस्कारों के कर्मफल के अनुसार प्रिय अप्रिय प्रसंग हर किसी के सामने आते हैं, उनका आना रोका नहीं जा सकता। भगवान् श्रीराम, योगेश्वर श्रीकृष्ण तक को विपत्तियों से छुटकारा न मिला। भवितव्यता कभी-कभी ऐसी प्रबल होती है कि प्रयत्न करते हुए भी उनसे बचाव नहीं हो सकता। ऐसे अवसरों पर मूर्ख लोग अपना खून सुखाते हैं, छाती पीटते हैं, रोते झींकते हैं और मर मिटते हैं। बुद्धिमान लोग जीवन की वास्तविक स्थिति पर नवीन प्रकार से विचार करते हैं। जो होना था सो हुआ या जो होना होगा सो होगा, घबराने से कुछ लाभ नहीं, वरन् दुगनी हानि है। कार्य नष्ट हुआ, साथ ही शरीर भी नष्ट करना, यह कोई समझदारी का काम थोड़े ही है।

इसलिए विवेकवान् अपने मस्तिष्क पर काबू करते हैं और खिलाड़ी की भाँति बड़ी से बड़ी कठिनाई को छोटी करके देखते हैं। इसका अर्थ उत्तरदायित्व की उपेक्षा करना नहीं, वरन् यह है कि कठिनाई से पार होने के लिए शक्ति को सुरक्षित रखा जाय, उसका अपव्यय न होने दिया जाय। चिंता, शोक एवं घबराहट में सिवाय बर्बादी के लाभ कुछ नहीं है, इसलिए इस मानसिक दुर्बलता को परास्त करने का शक्ति भर प्रयत्न करना चाहिए।

आप संसार के कर्मनिष्ठ महापुरुषों से शिक्षा ग्रहण कीजिए, अपने को धैर्यवान् बनाइये, काम को खेल की तरह कीजिए, कठिनाइयों को मनोरंजन का एक साधन बना लीजिए। अपने मन के स्वामी आप बने रहिए, अपने घर पर किसी दूसरे को मालिकी मत गाँठने दीजिए। चिन्ता, शोक, आदि शत्रु आप के घर पर कब्जा जमाकर, मस्तिष्क पर अपना काबू करके, आपको दीन-दरिद्र की भाँति दुःखी करना चाहते हैं और शांति तथा स्वास्थ्य का हरण करके व्यथा-वेदनाओं की चक्की में पीसना चाहते हैं, इनसे सावधान रहिए। यदि शत्रुओं को आपके मस्तिष्क पर कब्जा कर लेने में सफलता मिल गयी, तो आप कहीं के न रहेंगे। भ्रम और अज्ञान के बन्दीगृह में पड़े-पड़े बुरी तरह सड़ते रहेंगे और स्वनिर्मित नरक में अपने आप द्वारा सुलगाई हुई अग्नि से स्वयमेव जलते रहेंगे। यह बात बहुत ही असहज और दुःखदायी स्थिति होगी।

लेखक शांति कुंज, हरिद्वार के अध्यक्ष हैं।

कर्मयोग प्रधान जीवन

डा० ऊषा खोसला

पूर्व का कर्मयोग प्रधान जीवन ही श्रेष्ठ जीवन है क्योंकि इस प्रकार के जीवन में अशांति, शोक, तनाव, चिन्ता, भय तथा जीवन में असंतुलन होने के लिये कोई भी स्थान नहीं है। जीवन में सन्तुष्टि, प्रसन्नता, धीरता और वीरता जैसे गुणों का विकास स्वयं ही होता रहता है। कर्मयोग प्रधान जीवन का आधार सनातन सत्य है। इस प्रकार के जीवन की पद्धति द्वारा लोक तथा परलोक दोनों ही संवर जाते हैं क्योंकि योग्यता तथा सार्मथ्य के अनुसार मनुष्य लौकिक कर्तव्य को भी पूरा करता रहता है और हर कर्म के फल को परमात्मा को अर्पित करता चला जाता है। श्री भगवान ने गीता में मनुष्य मात्र को यही तो संदेश दिया है कि जीव को कर्म करने का अधिकार है लेकिन परिणाम में क्या मिलता है उसके ऊपर मनुष्य का अधिकार नहीं है। अतः बिना परिणाम की इच्छा किये तुम निरन्तर कर्म करते जाओ। इस प्रकार से तुम कर्म बन्धन में नहीं बंधोगे। फल में आसक्ति ही तो बन्धन कारक है। मन को बन्धन मुक्त कर लेना ही मोक्ष का मार्ग है। यही जीवन का लक्ष्य भी है। इस प्रकार के जीवन द्वारा मनुष्य की सब मौलिक आवश्यकतायें पूर्ण होती जाती हैं तथा अन्त में वह दिव्य धाम को भी प्राप्त कर लेता है। जिस मनुष्य ने अपने जीते जी अपने लोक तथा परलोक दोनों को ही संवार लिया उससे बढ़कर जीवन का कुशल खिलाड़ी और कौन हो सकता है। भारतवासियों का यह अहोभाग्य है कि इस प्रकार के जीवन के अमूल्य दिव्य सिद्धान्त उनके पास मौजूद हैं। कहीं से सीखने नहीं पड़ते, खरीदने नहीं पड़ते। उन्हें निशुल्क में ऋषि परम्परा द्वारा विरासत में ही मिला हुआ है यह दिव्य खज़ाना।

यदि इस प्रकार की दिव्य सम्पत्ति से वे लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं तो यह उनकी अपनी ही भूल है। वे इस अनमोल धन को जीवन में धारण करने में आलस्य कर रहे हैं।

पश्चिम का अर्थ प्रधान जीवन बिल्कुल भिन्न प्रकार की सोच पर आधारित है। अर्थ लोलुप मनुष्य मन से असन्तुष्ट, बेचैन, तनावग्रस्त ही रहता है। अर्थ प्रधान जीवन का आधार धार्मिक न होकर अहंकार पर खड़ा है। समर्पण, त्याग, परम सत्य इसका आधार नहीं है। प्राप्तव्य के लिये ही कर्म किया जाता है। कर्म आज होता है तो परिणाम भविष्य में। इसलिए परिणाम की प्रतीक्षा का समय तनाव से पूर्ण होता है। यदि पुरुषार्थ करके मनवाञ्छित फल प्राप्त हो गया तो लोभ बढ़ता है, यदि इच्छा पूर्ति नहीं होती तो क्रोध और विषाद ही हाथ लगते हैं। कर्तापन का अभिमान बना ही रहता है। इस प्रकार का अहंभाव मन को स्वतंत्र नहीं होने देता। लोभ, क्रोध तथा विषाद सभी तमोगुण हैं। ये मनुष्य के भीतर नकारात्मक विध्वंस पैदा करते हैं। इसलिए अर्थवाद का सिद्धान्त मनुष्य को जीवन भर असन्तुष्ट ही रखता है। इस प्रकार के जीवन में सुख सुविधा का सामान और धन तो हो सकता है लेकिन आनंद

की कोई अनुभूति नहीं हो सकती। बढ़िया बिस्तर तो हो सकता है लेकिन नींद शांतिदायक नहीं हो सकती। घर के बाहर चार चार कारों तो खड़ी हो सकती हैं लेकिन हृदय का आंगन खाली ही रह जाता है। क्योंकि हृदय दिव्यता की परम धारा से तो कट गया। ऐसे जीवन में शुष्कता और नीरसता न हो तो और क्या हो।

पश्चिम देशों में यही हुआ है। सामान के अंबार लग गये हैं लेकिन मनुष्य मन से विक्षिप्त हो गया है। आत्मा और परमात्मा जीवन से खो गये हैं। अर्थ की प्रधानता का सिद्धान्त तो इसीलिए अपनाया था कि जीवन में पूर्णता आयेगी। चारों ओर खुशहाली और मंगल ही मंगल होगा। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। विक्षिप्त मन में प्राण ऊर्जा के अभाव में मनोबल क्षीण हो जाता है। और मनुष्य मानसिक तथा शारीरिक रोगों का शिकार बन जाता है।

विज्ञान, तकनीक, अनुसन्धान इस देश में उन्नति के शिखर पर हैं। लेकिन भौतिक विज्ञान लोगों के मन की विक्षिप्तता को दूर करने में असफल हो गया है। रोगों पर काबू पाने के लिये दिन प्रतिदिन नये नये यंत्र खोजे जा रहे हैं। पर रोग शायद इतनी भयंकर पहले कभी नहीं थे जितना भयंकर रूप अब ले चुके हैं। जिन बीमारियों को बुढ़ापे की बीमारियाँ कहा जाता था वे बाल्यावस्था तथा किशोरावस्था में देखने को मिल रही हैं। तनाव इतना अधिक है कि तनाव को कम करने के लिये नींद की गोलियाँ ही जीवन का भाग बन चुकी हैं। यह है भीतरी स्थिति अमेरिका की। जो दुनिया की सबसे बड़ी शक्ति है किन्तु जो अपने निवासियों को सन्तुष्टी तथा मन का विश्राम नहीं दे सकती।

भारतवासियों को इस संस्कृति रहित देश का अंधा धुंध अनुकरण करने से बचना है। अपने कर्मयोग वाली जीवन पद्धति को ही जीवन में धारण करके जीवन में पूर्णता को प्राप्त करना है। भारत वर्ष की ऋषि परम्परा और उनके द्वारा दिया गया दिव्य ज्ञान ही महान है। उसी द्वारा भारतवर्ष का चहुँमुखी विकास सम्भव है।

आयुर्वेद हीलिंग सेंटर
हेवर्ड यू. एस. ए.

भारत में परमाणु सूर्योदय

आर. के. श्रीवास्तव

भारत में परमाणु सूर्योदय? कहाँ है? अभी तो दिखाई नहीं देता है। इसे परमाणु तारोदय सम्भवतः कह सकें क्योंकि अभी कुल ऊर्जा उत्पादन में परमाणु का सहयोग केवल 4 प्रतिशत है। तो क्या परमाणु सूर्योदय होना चाहिए? क्या यह भारत के हित में है तथा ऐसा होना सम्भव है? यह एक यक्ष प्रश्न है। क्या इसका उत्तर देने के लिए धर्मराज युधिष्ठिर को आना होगा? नहीं! हम तो उन्ही के वंशज हैं। यदि तर्कपूर्ण दृष्टि से विचार करें तो हम स्वयं ही इसका उत्तर प्राप्त कर सकते हैं।

परमाणु ऊर्जा के अतिरिक्त विद्युत उत्पादन के अन्य अनेक स्रोत हैं। स्वदेशी कोयला, आयतित कोयला, जल विद्युत उत्पादन, पवन व सौर ऊर्जा तथा कूड़े कचरे से बनने वाली बिजली ऐसे ही अन्य विकल्प हैं। भारत ने इन सभी को अपना रखा है किन्तु फिर भी आवश्यकता के अनुरूप बिजली का उत्पादन नहीं हो पा रहा है। इन सभी स्रोतों की अपनी अपनी सीमाएँ हैं। इसके अलावा विकास के साथ साथ बिजली की माँग भी प्रति वर्ष बढ़ती जा रही है।

देश में उत्पादित कोयला गुणवत्ता में उच्च श्रेणी का नहीं है। परिणामतः संयंत्र चलाने के लिए कोयले का आयात भी करना पड़ रहा है। भारत तथा विश्व में भी कोयले का भण्डार सीमित है। इन सबके अतिरिक्त कोयले से कार्बन का उत्सर्जन होता है जो पर्यावरण को प्रदूषित करने के अतिरिक्त विश्व के तापमान को बढ़ाने में भी सहायक है। विश्व के तापमान बढ़ने के कारण पहाड़ों की बर्फ पिघलनी शुरू हो गई है तथा इसके दुष्परिणामों से सभी भली भाँति परिचित हैं।

जलविद्युत उत्पादन के विषय में आम धारणा है कि इससे पर्यावरण को कोई हानि नहीं होती। केन्द्रीय सरकार के अनुमान के अनुसार हिमालय क्षेत्र में एक लाख पचास हज़ार मेगावाट पन बिजली उत्पादन की क्षमता है। पर्यावरण को हानि न होने वाली बात पूर्ण रूप से सही नहीं है। इसके लिए विशाल बांधों का निर्माण करना पड़ता है जिसके कारण पहाड़ों के लाखों पेड़ काटने पड़ते हैं। पेड़ काटने से निश्चित रूप से पर्यावरण को हानि पहुँचती है। इसी कारण पर्यावरण विद बांध के निर्माण का विरोध करते हैं। इसके अलावा किसी दैवी दुर्घटना के कारण यदि बांध टूटता है तो हज़ारों गाँवों व शहरों के बहने तथा लाखों लोगों एवं पशुओं के मरने की आशंका है। इन बांधों की सुरक्षा व्यवस्था भी बहुत जरूरी है क्योंकि आतंकवादी कभी भी उन्हें अपना निशाना बना सकते हैं।

पवन ऊर्जा भी विद्युत आपूर्ति का अच्छा स्रोत है। इससे न तो पर्यावरण को नुकसान पहुँच सकता है और न ही इसमें किसी दुर्घटना की ही आशंका है। किन्तु इसका उपयोग बहुत सीमित है क्योंकि यह वहीं लगाया जा सकता है जहाँ निरंतर तेज हवाएँ चलती हैं।

डेनमार्क ने बहुत बड़ी धनराशि खर्च करके पवन ऊर्जा के लिए टरबाइन लगाये। किन्तु बाद में पता चला कि जब जरूरत पड़ती है उस समय तेज हवाएं नहीं चलतीं तथा विद्युत उत्पादन नहीं हो पाता। ब्रिटेन की दो कम्पनियाँ ऐसी तकनीक विकसित कर रही हैं जिससे हवा की कमी पूरी की जा सके। इसके अनुसार तेज हवाओं के चलने के समय अतिरिक्त बिजली से जमीन के अन्दर गुफाएं बनाकर अत्याधिक दबाव की हवा भर दी जाती है जो बाद में टरबाइन चलाने के काम आती है। इसी तकनीक से जर्मनी के हन्टडोर्फ (Huntorf) में 25 वर्ष पहले लगाया 290 मेगावाट का प्लांट 2,90,000 घंटों को बराबर बिजली की आपूर्ति कर रहा है। भारत में भी इसका उपयोग हो सकता है। सौर ऊर्जा से भी पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होता। इसके लिए तेज धूप की आवश्यकता होती है जो राजस्थान के अतिरिक्त शायद ही किसी अन्य राज्य में उपलब्ध हो। इस प्रकार इससे उत्पन्न ऊर्जा बहुत कम होगी।

पर्यावरण को दूषित न करने वाला एवं विश्व के तापमान पर विपरीत प्रभाव न डालने वाला विद्युत ऊर्जा का सबसे अच्छा स्रोत परमाणु ऊर्जा है। इस सम्बन्ध में दो महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं। पहला यह कि वास्तव में यह स्रोत अन्य पारम्परिक स्रोतों की तुलना में अच्छा है तथा भारत को इसके विकास का प्रयत्न करना चाहिए। इसके लिए इसके गुण दोषों तथा अन्य सम्बन्धित पहलुओं पर विचार करना होगा। दूसरा प्रश्न परमाणु शक्ति से विद्युत उत्पादन के लिए भारत एवं अमेरिका के बीच होने वाला करार है। इसकी चर्चा गत वर्ष बहुत रही तथा अन्त में भारत सरकार ने इस करार पर हस्ताक्षर कर दिये।

इस करार के सम्बन्ध में भी कुछ बातें जान लेना आवश्यक है। इस करार के पक्षधरों का कथन है कि करार से परमाणु से विद्युत उत्पादन के लिए आवश्यक ईंधन की निरन्तर आपूर्ति होती रहेगी तथा इससे देश की बिजली की कमी को पूरा किया जा सकता है। इसके विरोधियों के अपने अलग तर्क हैं। इनकी सर्वप्रथम आपत्ति परमाणु ऊर्जा के मँहगे होने के कारण है। इनका कहना है कि कोयला आधारित बिजली घर स्थापित करने में प्रति मेगावाट 4.5 करोड़ की लागत आती है। गैस से चलने वाले बिजलीघर की लागत 3 करोड़ रुपये प्रति मेगावाट है। स्वदेशी परमाणु रिएक्टर पर 7-8 करोड़ प्रति मेगावाट खर्च आता है जबकि आयातित रिएक्टर का खर्च 10 करोड़ रुपये है।

इस करार के समर्थकों का कहना है कि करार पूर्ण असैन्य परमाणु ऊर्जा सहयोग है तथा इससे भारत को भी वही लाभ मिलेंगे जो अमेरिका को हासिल हैं। किन्तु विरोधी इस बात से सहमत नहीं हैं। इसका कारण यह है कि परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह अर्थात् एन एस जी के दिशा निर्देशों के भाग-2 के पैरा 4(ई) के अनुसार आपूर्तिकर्ता राष्ट्र को किसी भी हस्तांतरण के पूर्व यह देखना आवश्यक है कि प्राप्तकर्ता राष्ट्र की नीतियाँ, बयान एवं क्रियाकलाप परमाणु अप्रसार के समर्थन में हों तथा प्राप्तकर्ता राष्ट्र अप्रसार के क्षेत्र में अन्तरराष्ट्रीय नियमों का पालन करता हो। इस प्रकार भारत को मिलने वाली छूट तीन शर्तों

पर आधारित है। पहली यह कि भारत अपने असैन्य व सामरिक परमाणु कार्यक्रम एवं सुविधाओं को चरणबद्ध रूप में अलग अलग करेगा। दूसरे भारत के परीक्षणों पर स्थगन जारी रहेगा तथा तीसरी शर्त के अनुसार एन एस जी के दिशा निर्देशों के अनेकों प्राविधान उस पर लागू होंगे। भारत वास्तव में परमाणु हथियार सम्पन्न राष्ट्र है किन्तु करार की शर्तें गैर परमाणु क्षमता संपन्न राष्ट्रों के साथ होने वाले समझौते की तरह की हैं।

इस करार का एक और महत्वपूर्ण पहलु यह है कि भारत का सम्पूर्ण असैन्य परमाणु कार्यक्रम स्थाई तथा कानूनी रूप से अन्तरराष्ट्रीय निगरानी के अधीन होगा। मसौदे में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि किसी भी परिस्थिति में भारत को निगरानी से मुक्त नहीं किया जायगा। किन्तु अनवरत ईंधन आपूर्ति के सम्बन्ध में केवल यह उल्लेख किया गया है कि इसके प्रभावित होने पर भारत सुधारात्मक उपाय कर सकता है। इस प्रकार आपूर्ति अवरिल नहीं है जब कि निगरानी अवरिल रहेगी। इस निगरानी के लिए भारत को भुगतान भी करना पड़ेगा। मसौदे के अनुसार एक केन्द्र के निरीक्षण के लिए भारत को प्रति वर्ष 12 लाख यूरो (लगभग 9-10 करोड़ रुपये) का भुगतान करना होगा। भारत में ऐसे दो दर्जन केन्द्र होंगे। इस प्रकार निगरानी के लिए भारत को प्रतिवर्ष 240 करोड़ रुपये देने होंगे।

करार के सम्बन्ध में अब भविष्य ही बताएगा कि यह कितना लाभप्रद रहा। मुख्य प्रश्न अभी भी यह है कि भारत अपनी ऊर्जा जरूरतों में परमाणु ऊर्जा को अपना देने के सम्बन्ध में क्या नीति निर्धारित करता है। कहा जाता है कि परमाणु ऊर्जा के उत्पादन से पर्यावरण को कोई खतरा नहीं है। किन्तु इसमें परमाणु कचरा व रेडियो धर्मी प्रदूषण भी बड़ी समस्या है। इसके अलावा दुर्घटनाएं भी हैं। 1979 में अमेरिका के श्री माइल द्वीप में परमाणु संयंत्र में दुर्घटना हुई तथा इसके बाद से अमेरिका ने कोई परमाणु बिजलीघर नहीं लगाया। इसी प्रकार 1986 में चर्नोबाइल (CHERNOBYL) दुर्घटना के बाद जर्मनी ने विद्युत उत्पादन में परमाणु का उपयोग न करने का निर्णय लिया। इसके बावजूद 2001 की एक रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में विश्व भर में सबसे अधिक अर्थात् 104 परमाणु यूनिट विद्युत उत्पादन में लगे हैं जिनसे कुल उत्पादन की लगभग 20 प्रतिशत बिजली पैदा होती है। जर्मनी में 11 यूनिटों से 32 प्रतिशत तथा फ्रांस में 57 यूनिटों से 78 प्रतिशत बिजली पैदा की जाती है। यहाँ से अन्य देशों को भी बिजली निर्यात की जाती है। अन्य देशों में जापान 53 यूनिटों के द्वारा 29 प्रतिशत, इंग्लैंड 33 यूनिटों द्वारा 19 प्रतिशत बिजली पैदा करता है। किन्तु भारत में 14 यूनिटों के द्वारा केवल 2.8 प्रतिशत बिजली ही परमाणु से पैदा की जा रही है। समस्त विश्व में 2005 में परमाणु विद्युत उत्पादन कुल उत्पाद का 16% था।

1979 में अमेरिका में परमाणु बिजली घर की दुर्घटना के बाद परमाणु से विद्युत उत्पादन के विरोधी आन्दोलन में स्वीडन प्रमुख देश रहा है। किन्तु अब पर्यावरण के प्रदूषण एवं विश्व की ऊष्णता वृद्धि की आशंका को देखते हुए स्वीडन सरकार ने परमाणु से अधिक का अधिक मात्रा में विद्युत उत्पादन करने का निर्णय लिया है। क्या भारत को भी ऐसा ही निर्णय लेना आवश्यक है?

भारत को किसी दूसरे देश की केवल नकल करना उचित नहीं। हमें अपने देश की परिस्थिति, आवश्यकता, सर्वश्रेष्ठ तकनीक तथा ईंधन की उपलब्धता के आधार पर निर्णय लेना उचित होगा। परमाणु ऊर्जा के दो विकल्प हमारे सामने हैं। पहला विकसित तकनीक वाले विदेशी रिएक्टरों को आयातित करके परमाणु बिजली पैदा की जाय। इसमें ईंधन के रूप में यूरेनियम का उपयोग होगा। इसे भी आयात करना होगा। इसे अपना कर आत्मनिर्भर नहीं हुआ जा सकता।

दूसरा विकल्प है स्वदेशी तकनीक का विकास। कुछ लोगों का विचार है कि भारत अनुसंधान के कार्य में पीछे है। यदि वह अपनी नई तकनीक विकसित करने में लगा रहा तो विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया धीमी पड़ जायगी। कुछ को भारतीयों की क्षमता पर भी संदेह है। यह धारणा गलत है। परमाणु ऊर्जा की जानकारी दुनिया को 17वीं सदी के बाद हुई। भारत में ईसा से 1800 वर्ष पूर्व कणाद ने परमाणुवाद पर वैशेषिक सूत्र लिखे। जहाँ तक आधुनिक भारतीय की क्षमता का प्रश्न है एक उदाहरण पर्याप्त होगा। आई आई टी खड़गपुर के आयुर्विज्ञान संस्थान के डाक्टरों ने चार वर्ष के अनुसंधान के बाद एक ऐसा कृत्रिम हृदय बनाया है जो पशुओं पर ठीक प्रकार से कार्य कर रहा है। अब मानव पर इसका परीक्षण होना है तथा परीक्षण करने वाली टीम में प्रसिद्ध डा० वेनुगोपाल भी होंगे। इस कृत्रिम हृदय का मूल्य मात्र एक लाख रुपये होगा जब कि पहले अमेरिका में बने कृत्रिम हृदय का मूल्य 30 लाख रुपये था एवं वह भी असफल रहा। इसी प्रकार यदि परमाणु ऊर्जा के क्षेत्र में स्वदेशी व स्वात्मन्य के रास्ते दृढ़ निश्चयी योजना बने तो तकनीक विकसित हो सकती है। अमेरिका के राष्ट्रपति ओबामा ने हाल ही में कहा कि अमेरिका के युवाओं को भारतीय विद्यार्थियों के बराबर बनने का प्रयत्न करना चाहिए। आणविक ऊर्जा विभाग के 2008-2009 के बजट में लगभग 215 करोड़ रुपये की कटौती की गई जबकि शोध के लिए यह आवंटन बढ़ाना चाहिए था।

हमारे यहाँ झारखण्ड, आंध्र प्रदेश, मेघालय तथा राजस्थान में यूरेनियम के विशाल भंडार हैं। अभी तक केवल झारखण्ड के भण्डार का ही दोहन किया गया है। शेष में भी खनन करना आवश्यक है। विश्व में थोरियम का सबसे बड़ा भण्डार भारत में है। थोरियम तकनीक का विकास भारत को परमाणु ऊर्जा में पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर बना देगा। तमिलनाडु के कलपक्कम में फास्ट ब्रीडर रिएक्टर का आदर्श नमूना बन रहा है जो 2010-11 तक पूरा हो जायगा। इसमें यूरेनियम से प्राप्त प्लूटोनियम का प्रयोग होता है। इस रिएक्टर की खास बात यह है कि यह जितना ईंधन खर्च करता है उससे अधिक लौटा देता है। इस प्रकार ये रिएक्टर यूरेनियम की कमी नहीं होने देते। परियोजना की सफलता के बाद इस प्रकार के अन्य रिएक्टर स्थापित किये जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रयास से भारत में परमाणु सूर्योदय के सपने को साकार किया जा सकता है।

66/2 बी स्टेन ली रोड

इलाहाबाद

लक्ष्य प्राप्ति के लिए विरोधी भावों को त्यागें

सीताराम गुप्त

जीवन में आगे बढ़ने के लिए एवं निरंतर सफलता की ओर अग्रसर होने के लिए जीवन में महान् लक्ष्यों का होना अनिवार्य है। लक्ष्यों के बिना हम आगे कैसे बढ़ेंगे। लेकिन प्रश्न उठता है कि महान् लक्ष्यों को प्राप्त कैसे किया जाए? लक्ष्य सिद्धि के लिए निम्नलिखित तत्त्वों की ओर ध्यान देना अनिवार्य है:

1. सबसे पहले हम अपना लक्ष्य निर्धारित करें कि हमें करना क्या है। लक्ष्य एकदम स्पष्ट होना चाहिए। एक विद्यार्थी को चाहिए कि वह स्कूल की फ़ाइनल कक्षा की परीक्षाओं के बाद निश्चित कर ले कि किस क्षेत्र में जाना है। उसे विज्ञान, कॉमर्स अथवा कला किस क्षेत्र में आगे बढ़ना है। विज्ञान में भी मेडिकल में जाना है अथवा इंजीनियरिंग में यह निश्चित करना बहुत ज़रूरी है। हमें नौकरी करनी है अथवा व्यापार या अन्य क्षेत्र विशेष में जाना है यह निश्चित करना आवश्यक है। यदि लक्ष्य डावाँडोल होगा तो सफलता भी संदिग्ध रहेगी।

सबसे पहले लक्ष्य को निर्धारित कर उसे कागज़ पर लिख कर अपने पास रख लें अथवा डायरी में लिख लें। डायरी लिखना या प्लानर में टैक करना एक उपचार पद्धति ही है। जब हम दैनिक, साप्ताहिक, मासिक या अन्य अवधि विशेष में सम्पन्न किये जाने वाले कार्यक्रमों को लिख लेते हैं तो लिखने के साथ ही इसकी प्रोग्रामिंग हमारे मन द्वारा हमारे मस्तिष्क में हो जाती है और डायरी में लिखे कार्य हमें बिना डायरी देखे भी प्रायः उचित समय पर आभासित हो जाते हैं। यह एक प्रकार की स्वीकारोक्ति या संकल्प ही तो है जो हमने कागज़ पर लिख लिया है।

2. दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है लक्ष्य को न भूल जाना अर्थात् आपका लक्ष्य निरंतर आपके मन में बना रहे और इसके लिए आवश्यक है कि आप अपने लिखे हुए कागज़ को अपने पास रखें और बार-बार देखते रहें। या फिर किसी स्थान पर इसी लक्ष्य को कागज़ पर लिख कर एक जैसी कई प्रतियाँ तैयार कर लें और उनको घर या कार्य करने के स्थान पर इतनी ऊँचाई पर लगा दें जिससे वे आपको बार-बार दिखलाई पड़े। लिखाई साफ़ मोटी होनी चाहिए ताकि दूर से भी आसानी से पढ़ी जा सके। कागज़ यदि सुंदर और रंगीन अक्षरों में लिखा है तो उसकी प्रभावोत्पादकता कई गुना बढ़ जाती है। जितनी बार आप इन्हें देखेंगे, मन में अवश्य दोहराएंगे और आपका कार्य अर्थात् अपेक्षित लक्ष्य प्राप्ति सरल हो जाएगी। जब लक्ष्य आपके सामने है और प्राप्त करने के लिए कृत-संकल्प हैं तो प्रयास भी अवश्य करेंगे। अगर आप अपनी डायरी में प्रतिदिन इतना भर लिख लें “मैं बहुत प्रसन्न हूँ” अथवा “मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ” तो आप सचमुच

ऐसे ही हो जाएंगे। लक्ष्य को याद रखने का एक उपाय और भी है और वह यह है कि आप अपने लक्ष्य को अपने सभी मित्रों और परिचितों को बतला दें। यदि आपने एक बार उन्हें बतला दिया तो वे आपसे बार-बार आपके लक्ष्य की प्रगति के विषय में पूछते रहेंगे और आपको याद आता रहेगा तथा साथ ही यह लक्ष्य प्राप्त करना आपके लिए प्रतिष्ठा का कारण बन जाएगा। आप अधिकाधिक उत्साह से लक्ष्य प्राप्ति में जुट जाएंगे।

3. लक्ष्य प्राप्ति में लक्ष्य के विरोधी भावों का त्याग भी अनिवार्य है। मन में लक्ष्य की सफलता को लेकर न केवल संदेह ही नहीं पैदा होना चाहिए अपितु लक्ष्य के विरोधी भाव किसी भी प्रकार मन में न आने पाएं। श्रद्धा और विश्वास के साथ लक्ष्य को याद रखना और उसकी पूर्णता के लिए पूरी तरह आशावादी होना जरूरी है। आपका लक्ष्य आपकी इच्छा ही तो है, उत्कट इच्छा, जिसे पूर्ण करने के लिए आप कृतसंकल्प हैं। तो आपका लक्ष्य एक संकल्प के रूप में सामने है। इस संकल्प की मूल भावना के विरोधी भाव मन में हरगिज़ न आने पाएं। प्रायः हमारे संकल्प की मूल भावना के विरोधी भाव ही नये विरोधाभासी संकल्प के रूप में उपस्थित होकर हमारे मुख्य संकल्प को क्षीण या तटस्थ करके लक्ष्य पूर्ति में बाधक बनते हैं। जब भी कोई विरोधी भाव या नकारात्मक विचार मन में आए उसे नकार दें। मन में आए विरोधी भाव का भी विरोधी भाव सकारात्मक स्वीकारोक्ति के रूप में दोहराएं। विरोधी भावों से बचने के लिए वास्तव में लक्ष्य को एक स्वीकारोक्ति के रूप में बार बार दोहराएं तथा आंखे बंद करके उसको कल्पना चित्र के रूप में देखें।
4. लक्ष्य प्राप्ति में लक्ष्य को हम अल्पकालीन, अनतिदीर्घकालीन तथा दीर्घकालीन में भी वर्गीकृत कर सकते हैं। जैसा लक्ष्य वैसी समय सीमा लेकिन व्यक्तिगत लक्ष्यपूर्ति के लिए किसी भी स्थिति में यह सीमा सामान्यतः दो वर्ष से अधिक नहीं होनी चाहिए।

जो अल्पकालीन लक्ष्य हैं उनकी प्रातः एक सूची बना लें और दिन में दो-तीन बार देख लें। शाम को आप पाएंगे कि अधिकांश कार्य पूर्ण हो चुके हैं। शेष बचे कार्यों को अगले दिन की कार्य सूची में सबसे पहले लिख लें और उपरोक्त किया दोहराते रहें। दीर्घकालीन लक्ष्यों को ऊपर बताए गए तरीके से मोटा-मोटा लिखकर अपने आस-पास टाँग दें या चिपका दें।

अब एक प्रश्न उठता है कि एक बार में कितने लक्ष्य निर्धारित करें? जहाँ तक रोज़मर्रा के कार्यों या अल्पकालिक लक्ष्यों का प्रश्न है इसकी संख्या कितनी भी हो सकती है लेकिन दीर्घकालिक लक्ष्यों की संख्या सीमित होनी चाहिए। एक बार में एक-दो या अधिकाधिक तीन लक्ष्य लेकर चलें। क्योंकि अधिक लक्ष्यों को एक साथ ऊर्जस्वित करने से प्रति लक्ष्य कम ऊर्जा मिल पाएगी। मान लीजिए कि आप एक लेखक हैं तो आप एक बार में एक ही पुस्तक लिखने का लक्ष्य निर्धारित कर उस पर कार्य शुरू करें। पाँच-सात पुस्तकें एक साथ प्रारम्भ करना कदापि उचित नहीं होगा। आप कम विषयों और कम भाषाओं तक ही सीमित रहें तो

अच्छा है। विषेज्ञता क्या है? एक ही विषय पर अधिकाधिक कार्य करने का संकल्प अथवा जीवन के लिए लक्ष्य निर्धारण। लक्ष्यों का स्तर क्या हो? पहले अपेक्षाकृत सरल लक्ष्यों को निर्धारित कर सफलता प्राप्त करें। इससे आप में विश्वास का निर्माण होगा। बाद में मुश्किल लक्ष्यों को लें। इससे आपमें विश्वास का निर्माण होगा। बाद में मुश्किल लक्ष्यों को लें। इससे आपके विश्वास के स्तर में लगातार वृद्धि होती चली जाएगी। हर लक्ष्यसिद्धि का सीधा संबंध आपके विश्वास के स्तर के अनुकूल ही होगा।

जीवन में सफलता के लिए लक्ष्य निर्धारित करें न कि असफलता के लिए। जीवन में ऐसा लक्ष्य निर्धारित न करें जिस पर आप खुद विश्वास करने को तैयार न हों। आपके विश्वास का स्तर आपकी लक्ष्यपूर्ति में बहुत महत्वपूर्ण है। यदि आप कोई लक्ष्य निर्धारित करके कहते हैं कि यह कभी पूरा तो होगा नहीं तो यहाँ भी आपका विश्वास अवश्य काम करेगा परन्तु विपरीत दिशा में। विपरीत दिशा में विश्वास का उपयोग न करें।

हर सफलता को अपने विश्वास से जोड़ने का प्रयास करें। इससे आपके विश्वास में वृद्धि होगी और आपको अगले लक्ष्यों की प्राप्ति में अपेक्षाकृत शीघ्र सफलता मिलेगी।

आपने जो लक्ष्य अपने मन की शक्ति अर्थात् आध्यात्मिक ऊर्जा के सहयोग से पूर्ण किये हैं उनकी पूर्णता पर आपको अपार हर्ष होता है। यह हर्ष आपके शरीर में जो आनन्द की तरंगें उत्पन्न करता है अथवा हर्षानुभूति के कारण आपके शरीर में जिन लाभदायक *हार्मोन्स* का स्राव होता है वो शरीर को एक नई दिशा देते हैं। अर्थात् हमारे शरीर की रोगों से लड़ने की क्षमता को उन्नत कर हमें नीरोग बनाए रखने तथा रोग-मुक्त करने में सहायता करते हैं। यदि उपरोक्त विधि से हम मनमाफिक कोर्स में प्रवेश, व्यवसाय या नौकरी आदि प्राप्त कर लेते हैं तो हमें अपनी रुचि के क्षेत्र में अध्ययन या कार्य करने में अधिक आनन्द प्राप्त होता है। पसंदीदा क्षेत्र में विशेषज्ञता प्राप्त कर हम और बढ़ पाते हैं। इस प्रकार लक्ष्य सिद्धि अथवा समस्याओं का समाधान एक उपचारक क्रिया ही है।

यदि आप साधनों की सीमितता में विश्वास रखते हैं तो उसी के अनुसार लक्ष्य निर्धारित करें और यदि आपका विश्वास ब्रह्मांड की असीम प्रचुरता है तो कोई भी लक्ष्य प्राप्त करने में कठिनाई नहीं आएगी।

वैसे तो हर लक्ष्य सिद्धि आपके लिए स्वास्थ्यवर्धक है लेकिन उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति को भी आप अपना एक लक्ष्य निर्धारित कर सकते हैं।

- ए. डी. - 106 सी, पीतमपुरा, दिल्ली - 110088

संस्कृति बोध : भेद और अभेद

प्रमोद कुमार दुबे

उत्तर औपनिवेशिक दिमागी दुनिया में साम्राज्यवादी स्थापनाओं के किलों के ढहने के साथ ही आवश्यक हो गया है कि अनुवाद-संकमित भारतीय परंपरा के शब्दों के मूलार्थ की विकासमान धारा की पहचान बनी रहे। अन्यथा संकट गहरा सकता है, यदि हम अपने ही शब्दों को उपनिवेशवाद की फसल मानकर जात बाहर करना शुरू कर दें।

कुछ विद्वान् यह घोषणा कर चुके हैं कि 'संस्कृति भारतीय परंपरा का शब्द नहीं है। यह संस्कृत के कोशों में नहीं मिलता। यह न मोनियर विलियम्स के कोश में है न वी. एस. आप्टे के। लेकिन सभ्यता संस्कृत के कोशों में है और इसके अर्थों में संस्कृत के अर्थ का समावेश हुआ है। संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर का अनुवाद है। यह उप-निवेशवाद के साथ यूरोप से भारत आया है' (संस्कृति का समाजशास्त्र - आलेख, प्रो. मैनेजर पांडेय)। लेकिन संस्कृति शब्द पर्याप्त अर्थ-संपन्नता और भूमिका के साथ विश्व के प्राचीनतम भारतीय ज्ञान स्रोत वेद में उपस्थित है - सा प्रथमा संस्कृति विश्वधारा (यजु. - 7/14) - वह विश्व द्वारा वरण की गई प्रथम संस्कृति है। 'यानि सोमानि यानि छन्दांसि एतयोरेव सा संस्कृति' (8-4-1, श. ब्रा.) - जो सोम है, मंत्र है, वही संस्कृति है - आत्मा संस्कृतिर्वाव एतै सुजमान आत्मानं संस्क्रुते (ऐतरेय ब्रा, 6-5-1)। इन साक्ष्यों के आधार पर कहने का साहस क्यों नहीं किया जा सकता कि भारतीय परंपरा में 'संस्कृति' शब्द है और वैदिक साहित्य के इस शब्द से हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का भी परिचय जरूर हुआ होगा। यह कैसे स्वीकार कर लिया जाए कि संस्कृति शब्द अंग्रेजी के कल्चर शब्द का अनुवाद है। जिन अर्थों में कल्चर शब्द प्रचलित है, उनसे संस्कृति शब्द की दूरी जरूर है। यह दूरी समय के प्रभाव में पटती नजर आ सकती है, फिर भी दो स्थितियाँ स्पष्ट हैं - एक में संस्कृति शब्द के मूल अर्थ की धारा विकसित होती दिखाई देती है, जिसका स्रोत वेद से जुड़ा हुआ है। दूसरी में यह अंग्रेजी शब्द कल्चर का पर्याय बना दिखता है। दूसरी श्रेणी का अनुवादिक संस्कृति शब्द सस्ती लोकप्रियता से ग्रस्त है, जिसका प्रयोग अकस्स होता रहता है। इसी 'कल्चर' रूपी 'संस्कृति' को उपनिवेशवादी कहना अनुचित नहीं है। फिर भी दुर्योग यह है संस्कृति शब्द के अन्वय में जो बनावट दिखती है, उससे कल्चर की कोई समानता नहीं है।

'कल्चर' शब्द प्रारंभिक समय में खेती, पूजा, संवर्धन के अर्थ में लिया जाता था। कल्ट और यूर शब्दांशों से कल्चर शब्द बना है। लैटिन भाषा के धातु 'कॉलर' से कल्चुरा शब्द बनता है। कल्चुरा से कल्चर शब्द बना। लैटिन में भी यह शब्द कृषि और पूजा के अर्थ में प्रचलित रहा। पश्चिमी साहित्य में 'कल्चर' शब्द का पहला प्रयोगकर्ता बेकन को माना

जाता है। इसके बाद जर्मन विद्वान् हर्डर को इस शब्द के प्रयोग का श्रेय दिया जाता है। कल्चर और संस्कृति शब्द के मूलार्थ में निकटता नहीं होने के बाद भी अनुवाद की दुर्घटना हुई, जैसा कि अकस्म होता रहा है। यथार्थ और आदर्श में विरोधी अर्थ की खाई खोदने में अंग्रेजी अनुवाद का भारी हाथ है, अन्यथा आद्योपांत दिखाया हुआ आदर्श अनुमान के अर्थ में कैसे प्रयुक्त होता। होम, हाउस इत्यादि अंग्रेजी शब्दों के अर्थ के प्रति जितनी सतर्कता बरती जाती है, हिंदी के घर, आलय जैसे शब्दों के प्रति नहीं। हिंदी शब्दों के अस्तित्व को अनुवाद के फ्यूजन से कन्फ्यूज कर देने की साजिश आम बात हो गई है। इसका एक उदाहरण कल्चर के अर्थ में संस्कृति शब्द के अर्थ का समावेश भी है।

समाज चित्त के भीतर व्याप्त हुई कृति का प्रतिपादन दो स्तरों पर दिखाई देता है - पहला, वह समेकित अवयव, जो मनुष्य होने व प्राणी होने के कारण दैहिक गुणों के रूप में सर्वत्र है, जैसे - आहार, निद्रा, भय, मैथुन, क्रोध, लोभ, मोह इत्यादि, दूसरा वह समेकित भाव जो आत्मा व चेतना के रूप में सर्वत्र विद्यमान है। इसके लिए भी सम को आधार बनाया गया है। गीता में आया है - 'समोऽहं सर्वभूतेषु' 'निदोषं हि समं ब्रह्म (5-19) मैं सब जगह व्याप्त 'सम' हूँ। वह सम ब्रह्म के समान दोष रहित है। 'सम' संगीत की भी महत्त्वपूर्ण शब्दावली है। जहाँ लय और ताल मिलते हैं, उस स्थान को संगीत में सम कहते हैं।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जब 'संस्कृत' को स्थापित करते हैं, उनके सम्मुख सम और कृति का गहरा अभिप्राय मौजूद रहता है। उनके लिए संस्कृत शब्द सृजन की प्रक्रिया के अंतर्गत आता है। उनका वाक्य है, "प्राकृतिक शक्तियों का यदृच्छा (मनमाना) संयोजन विकृति है और सामाजिक मंगल की दृष्टि से संयोजन संस्कृति है।" संस्कृति को आचार्य द्विवेदी ने सामाजिक मंगल के लिए प्राकृतिक शक्तियों के सुनियोजन का माध्यम माना है। उन्होंने संस्कृति को प्रकृति और विकृति के नियमन की भूमिका में रखा है। उनका वाक्य है - "असंयत प्रकृति का नाम ही विकृति और संयत प्रकृति का नाम संस्कृति" (पृ. 219, ह. प्र. द्वि. ग्रं. - 8)। कहना अनुकूल है कि भूख लगना प्रकृति है, छीन-झपटकर खाना विकृति है और मिल-बाँटकर खाना संस्कृति। नदी की प्रकृति है ऊपर से नीचे की ओर बहना, खारे सागर में मिलकर विकृत हो जाना। लेकिन जब यही अधोगामिनी धारा उद्गमोन्मुख होती है, हिमालय की ओर मुड़ती है तब धारा नहीं रहती, राधा बन जाती है। काशी की उत्तरवाहिनी गंगा इसलिए महत्त्वपूर्ण समझी जाती है कि वह तद्भवया या कर्हें अपकर्षी प्रकृति नहीं रहती, संस्कृति बन जाती है।

संस्कृति शब्द प्रकृति शब्द के बाद की सुनियोजित स्थापना है। इसलिए प्रकृति शब्द के मूलार्थ की चर्चा आवश्यक है जो शक्ति काल को प्रकृत करती है, आकृत करती है, उसे प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से मुक्त दशा में काल का अनुभव नहीं होता। हम जिस काल का अनुभव करते हैं, वह पृथ्वी की गति के हस्तक्षेप से निर्मित होता है। इसी प्रकृति का

सृजन है जीवजगत्। त्रिधा प्रकृति की अवधारणा के कारण ही हमारे संस्कृति-बोध में विविधता के लिए इतना प्रश्रय है और विविधता को प्रश्रय देने के कारण सामंजस्य का अभाव, मुंडे-मुंडे मतिभिन्ना का क्लेश इत्यादि भी। यह स्थायी जनतंत्र का विलक्षण चरित्र भी है।

प्रकृति दशा से आगे बढ़कर कुछ विशेष होने या करने के प्रयास में ही मनुष्य उत्तरोत्तर विकास की ओर बढ़ता है। इस क्रम में खदान का हीरा नगीना बनने के लिए तराश की पीड़ा भी सहता है। प्राकृतिक गुणों से संपन्न मनुष्य प्राकृत कहा गया, जिसे भूख लगती है, नींद आती है, डर लगता है, मैथुन की इच्छा होती है, पर ऐसा तो पशु को भी होता है। वास्तविक मनुष्य होने के लिए प्राकृत रूप तक सीमित रहना पर्याप्त नहीं। इसलिए तुलसी बाबा ने कहा -

कीन्हें प्राकृति जन गुन गाना। सिर धुन गिरा लागी पछताना॥

पर विचित्रता यह है कि महा-विरागी शिव की मनोदशा के वियोग में उन्हीं प्राकृतजनों की भाँति हो जाती है जिनका कोमल तंतुओं से बना हुआ हृदय बहुधा चंचलाक्षियों के लोचनाघात से पीड़ित होता रहता है। यह रहस्य 'स्कंदपुराण' खोलता है -

**सासमुत्सुकयेत्काक्षी लोकेश मम मानसम्। प्राकृतस्य जनस्येव चञ्चलाक्षीव
लोचनम्। (दशाश्वमेध माहात्म्य)**

प्राकृतजनों की भाँति शिव होते भी हैं तो उस काशी के लिए होते हैं, जहाँ की प्रकृति अधोमुखी नहीं अपितु उर्ध्वमुखी है, वह प्राकृत दशा में नहीं है बल्कि संस्कृत हो चुकी प्रकृति है - सम की दशा में अग्रसर हो चुकी प्रकृति है। वह संस्कृति नहीं कही जा सकती है।

कहना शेष नहीं बचता कि आचार्य द्विवेदी जब संस्कृति को प्रक्रियात्मक परिभाषा देते हैं, उनके सम्मुख पारंपरिक संस्कृति-बोध अद्यतन प्रतिनिधित्व के लिए नवीन आकार लेता है। उनका कथन है - "सभ्यता ने मनुष्य के लिए दोनों ही मार्ग प्रशस्त कर दिए हैं।

वह विकृति की ओर भी जा सकता है और संस्कृति की ओर भी।" सोचना होगा कि वर्तमान समय का दबाव क्या हमें वास्तव में संस्कृति की ओर ले जा रहा है अथवा संस्कृति का नाम लेकर विकृति का नशा पिला रहा है? क्या संस्कृति के लेबल से जो भी चीजें पैकिंग हो रही हैं, सबकी सब संस्कृति की है? संस्कृति शब्द क्या सचमुच कल्चर के अर्थ में प्रयुक्त किया जाना चाहिए? और क्या उसे कल्चर के अनुवाद में विलीन हो जाने के लिए छोड़ देना चाहिए?

..... शेष पृष्ठ 58 पर

इंग्लैंड में अंग्रेज़ी की संघर्ष गाथा

दया प्रकाश सिन्हा

आज हमारे देश में अंग्रेज़ी का बोल-बाला है। अंग्रेज़ी का ऐसा रुतबा है कि उसके सामने सभी भारतीय भाषाएं पानी भर रही हैं। हिन्दी को अपना अस्तित्व बनाए रखना भारी हो रहा है। किन्तु एक समय ऐसा भी था, जब अंग्रेज़ी को स्वयं अपने देश इंग्लैण्ड में पैर जमाए रखना मुश्किल हो रहा था। अगर तब उसने संघर्ष न किया होता तो संसार से अंग्रेज़ी नाम की भाषा का नामो-निशां मिट जाता। इंग्लैण्ड में अंग्रेज़ी के स्थान पर फ्रांसीसी बोली जाती थी और दो सौ साल की गुलामी के बाद, भारत में उच्च और शिक्षित वर्ग उसी गर्व और अभिमान से फ्रांसीसी बोलता- जैसे आज अंग्रेज़ी बोलता है।

ईसा पूर्व 55 वर्ष में इंग्लैण्ड पर रोम सम्राट जूलियस सीज़र ने आक्रमण किया था। उस समय वहां 'केल्ट' जाति के लोग रहते थे। केल्ट जाति इंडो-यूरोपियन (आर्य) जाति की एक शाखा थी। ईसा के पश्चात् जब चौथी और पांचवीं शताब्दी में इंग्लैण्ड से रोमन आधिपत्य समाप्त हुआ तो जर्मनी की ट्यूटोनिक जातियों ने इंग्लैण्ड पर हमला किया। ये आक्रमण तीन प्रमुख लहरों में हुए, पहला जूट नामक उपजाति द्वारा सन् 499 में, दूसरा सैक्सन नामक उपजाति द्वारा सन् 577 में तथा तीसरा एंकल्स उपजाति द्वारा सन् 613 में। इन लोगों ने धीरे-धीरे पूरे इंग्लैण्ड पर कब्ज़ा कर लिया। वहां पर पहले से रह रहे केल्ट लोगों को उन्होंने मार डाला। जो बच सके, उन्होंने हार कर वेल्स के पहाड़ों और स्कॉटलैण्ड के पठारों में शरण ली, जहां स्थानीय लोगों में घुल-मिल कर उनकी अलग पहचान समाप्त हो गई। वर्तमान अंग्रेज़ अपने को इन जर्मन जातियों की सन्तान मान कर, अपने आपको 'एंग्लो सैक्सन' कहते हैं। इन्हीं के नाम पर वे अपने को और अपनी भाषा को 'इंग्लिश' कहने लगे।

इंग्लैण्ड पर एक अन्य महत्वपूर्ण आक्रमण सन् 1066 में 'नॉरमन' जाति के लोगों द्वारा हुआ। ये मूल रूप से फ्रांस के 'नारमैंडी' प्रदेश के थे, अतएव इन लोगों ने फ्रांसीसी भाषा को ही इंग्लैण्ड में राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित किया। पराजित लोगों की भाषा अंग्रेज़ी उपेक्षित होकर निम्नवर्ग तक सीमित हो गई। उच्च समाज में उसका कोई स्थान नहीं रहा। सरकार और उच्च वर्ग की भाषा, पठन पाठन की भाषा, साहित्य रचना की भाषा, अदालतों की भाषा प्रायः सभी क्षेत्रों में फ्रांसीसी स्थापित हो गई। वह सभ्यता की पर्यायवाची भी बन गई, ठीक उसी प्रकार, जैसे भारत में आज अंग्रेज़ी है।

जिस प्रकार हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं को अपना अस्तित्व बचाए रखने के लिए संघर्ष करना पड़ रहा है, ठीक उसी प्रकार अंग्रेज़ी को भी फ्रांसीसी भाषा के विरुद्ध अपने अस्तित्व की लड़ाई लड़नी पड़ी। यह लड़ाई लगभग तीन सौ वर्षों तक चली। इस अवधि में यद्यपि सरकार से अंग्रेज़ी को कोई संरक्षण नहीं मिला तब भी अंग्रेज़ों ने अपनी राष्ट्रीय अस्मिता के प्रतीक के रूप में अंग्रेज़ी को जीवित रखा तथा अंग्रेज़ी में थोड़ी बहुत साहित्य रचना भी हुई।

चौदहवीं शताब्दी में इतिहास ने एक महत्त्वपूर्ण मोड़ लिया। इंग्लैण्ड के नारमन राजा एडवर्ड तृतीय तथा फ्रांस के राजा फिलिप्स षष्ठम् में ठन गई। एडवर्ड तृतीय ने दावा किया कि वह फ्रांस के सिंहासन का हकदार है, क्योंकि वह फ्रांस के पूर्व स्वर्गवासी राजा चार्ल्स चतुर्थ की पत्नी की बहन का पुत्र है। फिलिप्स ने इंग्लैण्ड को फ्रांस के उन प्रदेशों से उखाड़ फेंकना चाहा जिन पर उनका कब्जा पहले से चला आ रहा था। परिणामतः सन् 1338 में अंग्रेज-फ्रांसीसी युद्ध छिड़ गया। इसे 'सौ वर्षीय युद्ध' भी कहते हैं क्योंकि यह रुक-रुक कर सन् 1453 तक चलता रहा। इस युद्ध के माध्यम से, इंग्लैण्ड में फ्रांस के विरुद्ध जो भावना उदय हुई उससे अंग्रेजी-राष्ट्रीयता संपुष्ट हुई।

नारमन राजा एडवर्ड तृतीय में फ्रांसीसी रक्त प्रवाहित था। वह अंग्रेजी की अपेक्षा फ्रांसीसी भाषा का ही पक्षधर था। किन्तु जब फ्रांस से युद्ध हुआ, तब उसके पास अंग्रेजी राष्ट्रीयता से जुड़ने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था। स्वयं को फ्रांसीसी भाषा का हिमायती कह कर वह सामान्य अंग्रेज को फ्रांस के विरुद्ध युद्ध में साथ लेकर नहीं चल सकता था। अतएव उसने स्वयं को अंग्रेजी राष्ट्रधारा में समर्पित कर दिया। अंग्रेजी राष्ट्रीयता के पर्यायवाची के रूप में अंग्रेजी भाषा की प्रतिष्ठा स्वाभाविक है। अतएव सन् 1362 में एडवर्ड तृतीय ने संसद को पहले से फ्रांसीसी भाषा में संबोधित करने की चली आ रही परिपाटी के स्थान पर, अंग्रेजी में संबोधित किया। साथ ही अदालतों में भी फ्रांसीसी के स्थान पर अंग्रेजी भाषा के प्रयोग का आदेश दिया। यह एक क्रांतिकारी कदम था। इसने इंग्लैण्ड की आने वाली शताब्दियों का स्वरूप ही परिवर्तित कर दिया। राष्ट्रीय भाषा के विकास के साथ अंग्रेजों में राष्ट्रीयता बोध और चरित्र का ऐसा विकास हुआ कि उसने विश्व के इतिहास को प्रभावित किया।

इसी राष्ट्रीयता बोध के परिणामस्वरूप सन् 1375 में वाइक्लिफ नामक एक विद्वान ने बाइबिल का अनुवाद यूनानी से अंग्रेजी में किया। अंग्रेजी साहित्य की प्रथम महत्त्वपूर्ण रचना 'कंटरबरीज टेल्स' का इस काल में आविर्भाव इस तथ्य को रेखांकित करता है कि नव-जाग्रत राष्ट्रबोध और आत्मविश्वास की ही अभिव्यक्ति इस कृति के माध्यम से हुई, जिसने एक अतिसंपन्न साहित्य परम्परा की आधारशिला रखी।

जो स्थिति चौदहवीं शताब्दी के इंग्लैण्ड में अंग्रेजी भाषा की थी वही स्थिति आज भारत में भारतीय भाषाओं की है। आज भारत में अंग्रेजी उच्चवर्ग की भाषा होने की गरिमा से मण्डित है। चाहे राजनेता हों या नौकरशाह, बड़े उद्योगपति हों या बड़े कलाकार सभी की अभिव्यक्ति का एकमात्र सम्मानित माध्यम अंग्रेजी है। सच तो यह है कि बिना अंग्रेजी जाने कोई राजनीति, प्रशासन, शिक्षा, न्यायपालिका आदि में बड़ा पद नहीं प्राप्त कर सकता, कोई बड़ा सेल्समैन, बड़ा मोटर मेकेनिक, बड़ा चर्मकार या बड़ा काष्ठकार आदि भी नहीं बन सकता। अंग्रेजी के इस एकछत्र शासन के अन्तर्गत भारतीय भाषाएं जीवित रहने के सतत संघर्ष में पराजित हो रही हैं। इसमें हिन्दी की स्थिति सर्वाधिक दयनीय है। अन्य भारतीय भाषाएं प्रायः प्रदेशीय भाषाएं हैं। अल्पमती भाषाएं होने के कारण इनके बोलने वालों में इनके प्रति एक भावुक लगाव है, क्योंकि ये उनकी पहचान बनाती हैं। किन्तु हिन्दी के संदर्भ में ऐसा

कुछ नहीं है। वह किसी विशेष प्रदेश की भाषा नहीं है। वह हिन्दी लोगों की अलग पहचान नहीं बनाती अतएव वह सबकी होकर भी किसी की भाषा नहीं है। इसलिए हिन्दी को उखाड़ना सबसे आसान है। हिन्दी राष्ट्रभाषा के गौरवमय पद से हटाई जा चुकी है। राजभाषा भी वह केवल नाम के लिए है।

सन् 1362 में फ्रांसीसी मूल के इंग्लैण्ड के राजा तृतीय ने वहां की संसद को, पूर्व परिपाटी के विरुद्ध फ्रांसीसी भाषा के स्थान पर राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी में संबोधित किया था। इस परिपेक्ष्य में यह दुर्भाग्यपूर्ण ही कहा जाएगा कि 15 अगस्त 1947 को, स्वतंत्रता की बेला में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने भारतीय भाषा हिन्दी के स्थान पर विदेशी भाषा अंग्रेज़ी में संबोधित करने का निर्णय लिया। भारत में अंग्रेज़ी और हिन्दी भाषाओं के तुलनात्मक विकास के विश्लेषण में यह तथ्य आधारभूत महत्त्व का है। जब भारत के प्रथम मंत्री और राष्ट्रपति संसद को भारतीय भाषाओं में संबोधित करते हुए अपनी भाषा के प्रयोग में गर्व अनुभव करेंगे, तब देश में राष्ट्रीय आत्मविश्वास जागेगा। तब भारतीय भी अंग्रेज़ों के समान विश्वपटल पर अपनी गरिमामयी पहचान बना सकेंगे।

बी-255, सेक्टर-26, नोएडा, उ.प्र.- 201301

.....पृष्ठ 56 का शेष

कौटिल्य कृत 'अर्थशास्त्र' के दूसरे (श्लोक ४२) में समाज के दो प्रकार के रास्तों पर चलनेवाली मनुष्य कोटियों में बाँटा गया है। एक है स्त्रीधनलोलुप मनुष्य कोटि, दूसरी साधु-सेवित सनातन मनुष्य कोटि। दोनों का उपयोग है-उसका भी, जो संयम-संतोष से स्थायित्व का मार्ग अपनाता है और उसका भी, जो मौज-मस्ती के लिए जीता है। संस्कृत रहना अथवा प्राकृत रहना रुचि का विषय है। आधुनिक समय में इस सामाजिक वर्गीकरण के समानांतर एक प्रक्रियात्मक वर्गीकरण प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम. एन. निवास ने भी किया। इसमें भी दो समूह-चरित्रों को रेखांकित किया गया। पहला चरित्र संस्कृतीकरण के अंतर्गत आनेवाले लोगों का है, दूसरा पाश्चात्यकरण के अंतर्गत आनेवालों का। इस प्रकार के वर्गीकरण को सामाजिक प्रवृत्तियों की समझ के लिए स्वीकार कर भी लिया जाए तब भी व्यक्ति-स्तर पर इन्हें ठीक-ठाक लागू नहीं किया जा सकता। साधु-सेवित सनातन प्रवृत्ति का व्यक्ति अपनी रुचि से भोग लोलुपों की श्रेणी में जा सकता है और भोग लोलुप भी अपना रास्ता छोड़ सकता है। कोई ऐसा व्यक्ति भी हो सकता है जो दोनों प्रवृत्तियों का सम्मिश्रण हो। इसी प्रकार संस्कृतिकृत व्यक्ति में पाश्चात्य लक्षण साथ ही इनमें अच्छे-बुरे का निर्णय भी सापेक्षिक होगा और गैर-जरूरी भी। विकृति कही जाने वाली रुचियाँ सुखदाई हो सकती हैं और मुक्ति देनेवाली भी तथा संस्कृत होने में अपार कष्ट का अनुभव भी हो सकता है या सुखानुभाव भी।

पश्चिम में समाचार पत्रों की गिरती हुई संख्या

शचींद्र चंद्र गोयल

कुछ समय पूर्व मैं अपने पुत्र के पास रहने के लिए अमरीका गया था। वहाँ पर यह देखकर मुझे आश्चर्य हुआ कि मेरा पुत्र एवं पुत्रवधु कोई भी समाचार पत्र नहीं खरीदते हैं। मैं तो इस बात का अभ्यस्त था कि सवरे की चाय का स्वाद तब तक अधूरा रहता है जब तक साथ में सुबह का अखबार न हो। किन्तु अखबार न खरीदने का मतलब यह नहीं कि उन लोगों को दुनिया के बारे में कोई खबर नहीं थी। वे इन्टरनेट पर अनेकों अखबारों की सुर्खियों को देखते थे। बल्कि कभी कभी भारतवर्ष में घटने वाली छोटी छोटी घटनाओं एवं छोटे नगरों के समाचारों से भी व परिचित रहते थे। मेरे लिए विशेष रूप से उन्होंने एक समाचार पत्र खरीदना प्रारंभ किया। सम्भवतः मेरे वापस आने के बाद उसे बंद भी कर दिया होगा।

अमरीका के अन्य परिवारों में भी जहाँ मैं गया उन्हें भी प्रायः ही समाचार पत्र उस प्रकार से पढ़ते हुए नहीं पाया जैसा कि हमारे देश में शिक्षित मध्यम वर्ग में पाया जाता है। हम ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते कि एक शिक्षित भारतीय समाचार पत्र नहीं पढ़ता होगा। यहाँ तो अनेक परिवार दो अखबार मंगाते हैं - एक हिन्दी या अन्य स्थानीय भाषा का एवं दूसरा अंग्रेज़ी का। भारत में अखबारों का सर्कुलेशन निरन्तर बढ़ रहा है। जो समाचार पत्र पहले एक या दो स्थानों से छपते थे अब वे दस या उससे भी अधिक स्थानों से अपने संस्करण निकाल रहे हैं। उनकी लाखों प्रतियाँ छपती हैं। रजिस्ट्रार ऑफ न्यूज़ पेपर्स ऑफ इन्डिया की एक रिपोर्ट के अनुसार 31 मार्च, 2005 को 60413 समाचार पत्र-पत्रिकाएँ रजिस्टर्ड थे जिनकी संख्या 31 मार्च, 2006 को बढ़ कर 62483 हो गई। इसी प्रकार 2004-2005 में समाचार पत्रों की प्रसार संख्या 156719209 थी जो 2005-2006 में बढ़कर 180738611 हो गई। इस एक वर्ष की अवधि में दैनिक समाचार पत्रों की प्रसार संख्या में लगभग 14% की वृद्धि दर्ज की गई। इस रिपोर्ट से स्पष्ट है कि भारत में प्रति वर्ष समाचार पत्रों एवं पत्रिकाओं की प्रसार संख्या बढ़ रही है। यद्यपि वर्ष 2008-2009 की रिपोर्ट उपलब्ध नहीं है किन्तु आशा की जानी चाहिए कि यह वृद्धि आज भी कायम है।

पश्चिमी देशों में समाचार पत्रों के लिए यह बयार उल्टी दिशा में बह रही है। इंग्लैंड के डेली मिरर, दि गार्जियन एवं दि ऑब्ज़र्वर जैसे प्रसिद्ध एवं पुराने दैनिक समाचार पत्रों को प्रसार संख्या घटने के कारण आर्थिक हानि हो रही थी अतः उन्होंने अपने मूल्य बढ़ा दिये। फ्रांस का लिबेरेशन नाम का अखबार बहुत बड़ी संख्या में बिकता था एवं विज्ञापन छापना अपनी शान के खिलाफ समझता था। किन्तु वह भी आर्थिक दुष्कर का शिकार हो

गया है। लास एंजिल्स टाइम्स एवं न्यूयार्क टाइम्स जैसे अखबारों की हालत अत्यन्त पतली हो गई है। शिकागो ट्रिब्यून एवं लास एंजिल्स को चलाने वाली कम्पनी ने दिवालियापन से बचने के उपाय किये हैं। न्यूयार्क टाइम्स ने 20 करोड़ डालर की राशि जुटाने के लिए अपनी नई बिल्डिंग गिरवी रख दी है।

इन समस्त परिस्थितियों का विश्लेषण करने के पश्चात् कुछ पाश्चात्य विशेषज्ञों ने अखबारों को इन देशों की मरती हुई चीज मानना शुरू कर दिया है। अमेरिका में हर शहर का अपना अखबार निकलता है। ऐसी आशंका प्रकट की जा रही है कि 2010 तक ये सभी स्थानीय अखबार बंद हो जाएंगे। कुछ विशेषज्ञों ने तो यहाँ तक भविष्यवाणी की है कि 2040 में अमेरिका का आखिरी अखबार भी बंद हो जाएगा। ऐसा लगता है कि अमेरिका में विशेष रूप से एवं यूरोप तथा इंग्लैंड में सामान्य रूप से समाचार पत्रों के उद्योग के खात्मे की शुरुआत हो चुकी है। यह आखिरी अंजाम तक कब पहुँचेगी यह केवल कयास ही लगाया जा सकता है।

इन देशों में अखबारों की यह दुर्दशा क्यों हुई है इसके विश्लेषण की आवश्यकता है। मैकआर्थर फाउण्डेशन नाम की संस्था ने तीन वर्ष तक इस परिदृश्य पर अध्ययन किया। उसने पाया कि युवा पीढ़ी अखबार नहीं पढ़ना चाहती। वह खबरों तथा अन्य सूचनाओं के लिए इन्टरनेट पर निर्भर करती है। इन्टरनेट नाम की यह खोज सूचनाओं का एक भण्डार लेकर प्रत्येक द्वार पर उपस्थित हो गई है। वहाँ पर छोटे बड़े सभी अखबारों ने अपने इन्टरनेट संस्करण निकालने प्रारम्भ कर दिये हैं। पत्रकारों के लिए यह आवश्यक कर दिया गया है कि उन्हें ऑन लाइन काम करने एवं इन्टरनेट के इस्तेमाल में प्रशिक्षित होना चाहिए। जो पत्रकार यह कार्य नहीं कर सकते उनकी नौकरी खतरे में है।

एक और रुझान सामने आया है। अखबारों के सम्पादक अपने बंद कमरों में बैठकर लिखा करते थे एवं यह समझते थे कि वे प्रत्येक विषय के विशेषज्ञ हैं। वे सरकार को राय देने एवं जनसाधारण की राय ढालने का दावा करते थे। पश्चिम में यह भ्रम टूट गया है। यद्यपि भारत में स्थिति लगभग वैसी ही है जैसी कि पूर्व में थी। इन्टरनेट एवं ब्लाग ने एक अनोखे संसार का द्वार खोल दिया है। आज लाखों व्यक्ति सम्पादक का कार्य करते हैं, लिखते हैं एवं अपना मत प्रकट करते हैं। अतः विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ कुछ सम्पादक नहीं हैं अपितु लाखों अन्य लोग हैं। यद्यपि इन ब्लागों में काफी कूड़ा देखने को मिलता है किन्तु कई में नायाब विचार, सूचनाएँ एवं विश्लेषण भी दिखलाई पड़ जाते हैं। सूचनाओं एवं विचारों के इस विराट संसार में जो तीव्र गति एवं क्षमता दिखलाई पड़ती है उसने मुद्रित अखबारों को अस्ताचल की ओर उन्मुख कर दिया है।

..... शेष पृष्ठ 63 पर

खरीदा कौड़ियों के मोल

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद विदेशस्थ भारतीयों ने तो विश्व ज्ञान की धरोहर को बढ़ाने में अपना योगदान किया है, किंतु वैसा योगदान भारत में होता हुआ नहीं दिखाई पड़ता। एक स्वतंत्र टिप्पणीकार गगन प्रताप ने इस ओर इंगित करते हुए लिखा है कि देश के सबसे होनहार युवा धीरे-धीरे शेष विश्व के लिए टैक्नो-कुली बनते जा रहे हैं। वे आगे लिखते हैं कि इनफोसिस और विप्रो का चमत्कार यही है कि उन्होंने देश के सबसे होशियार लड़के-लड़कियों को एकत्रित करके उन्हें अमरीका, यूरोप और जापान का टैक्नो कुली बना दिया है।

अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त विज्ञान पत्रिका नेचर से के.एस. जयरामन को उद्धृत करते हुए उन्होंने यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न खड़ा किया है कि 'पश्चिमी कम्पनियों के साथ सहयोग करते समय क्या भारत के शोध संस्थान अपनी स्थिति सुदृढ़ कर रहे हैं, या अपने युवा वैज्ञानिकों का शोषण सस्ते वैज्ञानिक मजदूरों के रूप में करने की छूट दे रहे हैं? पूर्ववर्ती मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ मुरली मनोहर जोशी भी अपने देश में शोध के गिरते हुए स्तर पर चिंता प्रकट करते रहे हैं। उनकी एक प्रमुख चिंता यह रही है कैसे विश्वस्तरीय वैज्ञानिक प्रकाशनों में भारतीय वैज्ञानिकों की भागीदारी कम होती जा रही है। वे आंकड़े देकर इस बात को स्पष्ट करते हैं कि जिस देश से जितने कम मौलिक वैज्ञानिक शोधपत्र इन विश्वस्तरीय प्रकाशनों में प्रकाशित होते हैं, उस देश में शोध की स्थिति उतनी ही खराब गिनी जाती है। चिंता का विषय यह है कि इन प्रकाशनों में भारतीय वैज्ञानिकों की भागीदारी निरंतर घट रही है।

पिछले कई दशकों में भारतीय जनमानस में जिस नेतृत्व ने पश्चिम के अन्ध नुकुरण का भाव भरा है, उनकी भी इसमें जिम्मेदारी कम नहीं है। किंतु उससे भी बुरी स्थिति तो तब पैदा होती है जब उस टैक्नो-कुली संस्कृति को रोजगार के नाम पर उचित ठहराया जाता है। विश्वभर में भारतीय कम्प्यूटर इंजीनियरों की धूम मची है। डालरों में मिलने वाली पगार को भारतीय रूपयों में बदल लेने से अपनी अमीरी का जो नशा चढ़ता है, उसमें यह वास्तविकता भुला दी जाती है कि विश्व स्तर पर आज भी भारतीय श्रम कौड़ियों के भाव खरीदा जा रहा है।

गगन प्रताप ने एक अत्यन्त सटीक उदाहरण से यह समझाया है कि जितने धन में एक अमरीकी वैज्ञानिक का एक वर्ष का व्यय न निकलता हो उतने में दर्जन भर भारतीय टैक्नो कुली दिन रात एक किए रहते हैं। भारतीय मेधा और श्रम का इससे बड़ा अपमान और क्या हो सकता है? बात मात्र धन की नहीं है। इन भारतीय टैक्नो कुलियों और वैज्ञानिक

मजदूरों को जिस दृष्टि से विश्वभर में देखा जाएगा, वैसा ही दृष्टिकोण भारत के प्रति भी उत्पन्न होगा। पिछली शताब्दी में भारत से गए गिरमिटिया श्रमिकों को आत्मसम्मान और राष्ट्र सम्मान प्राप्त करने में छह-छह पीढ़ियां लग चुकी हैं। भारतीय शिक्षा प्रणाली में जब तक आमूल चूल परिवर्तन नहीं किया जाएगा, आत्मबोध, अस्तित्वबोध, स्वत्वबोध और राष्ट्रबोध शिक्षा में नहीं आएंगे। ऐसे में मानसिकता में परिवर्तन असंभव है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि भारत में टैक्निकल शिक्षा के साथ ही राष्ट्रीय स्वाभिमान एवं अस्तित्वबोध की भावना भी भरी जाये ताकि इस राष्ट्र की प्रतिभाएं केवल दूसरों की नकल करने एवं किराए पर कार्य करने वालों का वर्ग बनकर न रह जायें।

संकलित

..... पृष्ठ 61 का शेष

भारत में अभी खतरे की यह घण्टी नहीं बजी है। कारण यह है कि 30% भारतवासी अब भी अशिक्षित हैं। कम्प्यूटर का उपयोग मुश्किल से 25% लोग करते हैं एवं इन्टरनेट का प्रयोग तो 10% लोग भी नहीं करते। पूर्व में दिये गये आकड़ों से स्पष्ट है कि हमारे यहाँ प्रिन्ट मीडिया अभी फल फूल रहा है एवं 2040 तक इसके म्यूजियम की वस्तु बन जाने का कोई भय नहीं है।

किन्तु यह वैश्वीकरण का युग है एवं विश्व में जो कुछ भी कही घटित होता है उसका प्रभाव हम पर पड़ना अनिवार्य है। अतः समाचार पत्र उद्योग को अभी से सावधानी बरतते हुए समय के साथ कदम बढ़ाना होगा। समस्त अखबारों को शीघ्रातिशीघ्र ऑन लाइन होने की आवश्यकता है। पत्रकारों को भी इन्फोर्मेशन टेक्नोलॉजी के आधुनिकतम तरीके अपनाने पड़ेंगे एवं उनमें तीव्र गति से होने वाले परिवर्तनों का आत्मसात करना होगा। भारत एक युवाओं का देश है जिनकी रुचि एवं तौर तरीके तेजी से बदलते हैं। अतः पाठकों के बदलने के साथ प्रिन्ट मीडिया का काया कल्प भी समय की मांग है।

अगर गहराई से सोचें तो अखबारी दुनियाँ में यह बदलाव उतना हानिकारक भी नहीं है। आज हम पेपरलैस ऑफिस की कल्पना करने लगे हैं एवं जो किसी सीमा तक साकार भी हो रही है। एक दिन अखबारों की दुनिया भी कागज रहित हो सकती है। क्या इस परिवर्तन से वनों का विनाश नहीं रुकेगा जिसके लिए हर अखबार मुहिम चलाता है।

मयूर विहार फेज 1, दिल्ली

Stem Cell – A New Wonder Therapy

O P Saxena

The discovery of stem cell therapy is no less important than the discovery of penicillin. It will revolutionise the treatment of diseases like diabetes, osteoarthritis, infertility etc. and even synthetic blood will be produced in the laboratory with its help.

Recently a prominent daily newspaper carried the news that synthetic blood from stem cells is a possibility in three years time and that it's production will ensure unlimited amounts of synthetic human blood paving the way for infection free emergency transfusion. Another paper highlighted the popularity of stem cell therapy in the treatment of serious diseases like cancer, thalassaemia, leukemia etc motivating politicians and celebrated personalities to secure safety of umbilical cord of their children and grand children in Cord Blood Bank. A revolution in medical science, indeed, is a welcome measure for the welfare of humanity. Yet, the science of stem cell is not beyond controversy and is engaging the concern of scientists and governments. It is in this context that effort is being made to highlight the nature, production and usefulness of stem cells in medical therapy.

Cells are those small units of the living organism that form the fundamental basis in the making of the humans and other beings. They are not visible to the naked eye, therefore, can be observed only by the microscope. It is estimated that there are about 6000 billion cells in human body. A group of cells is known as tissue which only perform one type of specific function. Cells perform different functions. For example, tissue cells expand and contract. They are also present under the layers of skin. The brain cells are helpful in the thinking process. Eye cells transmit rays to the brain. The stream of life is so inextricably connected with them that life continues so long as the dead cells are replaced by the new cells.

Stem cells are unspecified cells that have the remarkable potential to develop into many different cell types in the body. When

a stem cell divides, each new cell has the potential to either remain a stem cell or become another type of cell with more specified functions, such as a muscle cell, a red blood cell or a brain cell. The practical definition of a stem cell is the functional definition – a cell that has the potential to generate tissue over a lifetime.

The two broad types of stem cells are embryonic stem cells and adult stem cells. Stem cells are found in abundance in embryo and umbilical cord. Embryonic stem cells are taken from 3-5 days embryo that later differentiate into specialized cells. In the process embryo is destroyed. Adult stem cells are found in adult tissues including umbilical cord blood and have the ability to divide and create another cell like itself and also divide and create a cell more differentiated than itself. While adult stem cells are multipotent i.e. stem cells can differentiate into a number of cells, but only those of a closely related family of cells. Human embryonic stem cells are said to be pluri potent i.e. can differentiate into nearly all cells. Thus, embryonic stem cells have greater developmental potential than adult stem cells.

Stem cell research is quite expensive and takes several years of trial and error. Research events date back to 1908 when the term stem cell was proposed for scientific use by the Russian histologist Alexander Maksimore at the Congress of hematological society in Berlin. In 1981 mouse embryonic stem cells were derived from the inner mass by the scientists who coined the term 'embryonic stem cell'. The first human embryonic stem cell was derived by James Thomson in 1998.

Stem cells can now be grown and transformed into specialized cells with characteristic consistent with cells of various tissues such as muscle or nerves through cell culture. Medical researchers believe that stem cell therapy has the potential to dramatically change the human diseases. Highly plastic adult stem cells form a variety of sources including umbilical cord blood and bone marrow that are used in medical therapies.

According to a report the scientists at the University of Shanghai have isolated a small number of germ like stem cells from the ovaries of adult rodents and transplanted them into the infertile mice. Eventually the mice gave birth to offspring. The technique involving transplanting stem cells into the ovaries produce new eggs in infertile women has the potential to restore fertility in infertile women. Scientists believe that

stem cells can also be used to extend female reproductive life span and even restore fertility after menopause.

British scientists are reported to be all set to become the first in the world to use stem cells for producing stem cells having the potential to multiply indefinitely, are cultured in laboratory with nutrients to stimulate oxygen- carrying red blood cell creation. Such blood is said to have the benefit of not being at the risk of being infected with viruses like HIV or hepatitis. If successful, the project can help save the lives of victims of traffic accidents, soldiers injured in a battle field etc by using synthetic blood in place of human blood which depends upon the net work of human blood donors.

British scientists have claimed to have developed the world's first stem cell therapy to cure age related muscular degeneration (AHD), the most common cause of blindness. They have conducted experiments with rats and pigs which have demonstrated that stem cells can prevent blindness. The treatment involved replacing a layer of degenerated cells with new ones created from embryonic stem cells. According to Tom Bromridge, the chief executive of the Muscular Disease Society, the stem cell therapy is a huge step forward for patients suffering from AHD.

Scientists in Brazil have developed a stem cell treatment which can free diabetes from dependence on insulin. The treatment stops immune system of patients with type I diabetes from destroying the pancreatic islet cells which manufacture insulin hormone.

Stem cell research in India is being conducted under the guidelines laid down by the Indian Council of Medical Research. In a pilot study, stem cell therapy conducted in AIIMS New Delhi have shown remarkable results and have brought hope to the partially paralysed patients who become handicapped and are unable to carry on daily routine work independently. The neurologists are reported to have removed stem cells from the patients bone marrow from the hip bone, purified them and injected them intravenously to the patient forearms within few hours. Within six months the patients were able to carry out daily activities independently. The research established the early findings that stem cells have an instinctive guidance system and migrate to the areas of injury. The technique brings new hope to patients who have suffered fracture of bones who will be free from conventional treatment

involving use of steel plates, rods and nut bolts. Osteoarthritis patients stand to gain from the new technique as joint replacement therapy would no longer be required.

Stem cells are found in abundance in the blood present in the umbilical cord of a new born child, which can be used in the treatment of serious diseases not only of the donor child but of the members of his / her family as well. Accordingly, cord blood banks have been established in some hospitals including AIIMS where cord blood present in the umbilical cord is kept safely within 10 minutes of the child's birth. According to Lifecell International more than 20000 people have secured safety of cord blood of their children in cord blood bank. Researchers believe that stem cell therapy using stem cells of blood present in umbilical cord have an edge over therapy using stem cells taken out from bone marrow.

However, there exists a great deal of social and scientific uncertainty surrounding stem cell research involving embryonic stem cells. This has generated controversy as extraction of stem cells from embryo leads to its destruction which is considered unethical and against the sanctity of life. George W Bush, the then President of USA by an executive order banned federal funding to promote research on embryonic stem cells created after August 2001 which has now been reversed by the President Barack Obama on 9th March 2009 by issuing an executive order.

Stem cell therapy offers a great hope for many sufferers around the world who cannot be treated with conventional treatment. Will it benefit the common man is a million dollar question.

*D-305, Pragati Vihar Hostel
Lodhi Road, New Delhi*

Health is the greatest gift, contentment the greatest wealth, faithfulness the best relationship.

Development of the Villages Through NGOs

S. R. Manan

Once Gandhiji told the renowned author Mulk Raj Anand that we cannot build India unless we build our villages. 'India lives in villages' this is true today as it was when we achieved Independence. The only difference is that in 1947 eighty five percent of our population lived in villages, today the ratio has come down to 70%.

Even after 62 years of Independence thousands of villages are not connected by metalled roads to main roads. Thatched mud huts, dirty lanes, no potable water and no toilets in most of the dwelling places create, a dismal picture. Utter lack of health system and no proper education facilities make the villages a place unfit to live.

It is not that the government has not tried to do anything. From the first five year plan to the latest one astronomical sums of money have been allocated for village development. From Pradhan Mantri Gram Sadak Yojana, Pradhan Mantri Gram Yojana, Indira Awas Yojana Swarnajayanti Gram Swarojgar Yojana and the latest NREGA have been made and executed. A lot of govt. officials from village level worker to the Chief Development Officer at the District level are working for the village upliftment. But the results have been quite unsatisfactory, if not zero. The reasons are not far to seek: corruption, bureaucratic approach and sloth in working have marred the game and the village life remains as hellish as it was 62 years ago.

The only hope in this atmosphere of desolation lies in village development through NGOs. Being small and autonomous and their workers being mostly voluntary workers, they have flexibility of approach and almost free of corruption. They ensure the fulfillments of the needs of the rural populace and develop a work culture which is readily understood by the villagers. Because their operation is very much dependent on local people, they have the ability to mobilize people and work collectively. The voluntary agencies are committed to the concept of development and social change through people's participation. It is has been seen that the real and socio-economic development of rural people has taken place in areas where NGO are active.

The process of rural development must start from the people spontaneously. Taking stock of the problems, realistic planning and systematic encouragement to the efforts of the people themselves stimulated through voluntary agencies should be the main plank of the working of NGO's. The fulfillment of the basic needs of the people and creation of community infrastructure must be given top priority. To accomplish the task people should be organized in youth clubs, small farmers development societies, rural artisan groups, cooperatives etc.

It is worth repeating that the NGOs must ensure active cooperation of the beneficiaries. They must not go to the villages in the spirit of a donor or a government agency doling out assistance. They should build confidence among people, ensure their involvement and also seek the cooperation of the government departments for the formulation of development plans and their implementation.

The NGO's can play a crucial role in rural development in the following fields:-

- (1) Selection of backward villages.
- (2) Assessment of resources available in the area.
- (3) Human resource development through training.
- (4) Identification of right beneficiaries belonging to the weaker sections.
- (5) Organization and establishment of social action groups.
- (6) Tapping the assistance from various government and non-government organizations.
- (7) Ensure that the loanees utilize the money strictly for the purpose for which it was sanctioned.
- (8) Promotion of peace, harmony, unity and nationalism among rural people.
- (9) Fighting the evils of untouchability, blind beliefs, child marriages, etc.
- (10) Raise income levels by expanding employment opportunities specially for those below poverty line.

- (11) Eradication of illiteracy among people ensuring that every child of school going age attends the school.
- (12) They should play a vital role in the provision of health services, sanitation and fight against malnutrition
- (13) Setting up such small scale industries which will generate self-employment among youth and raise their income level.
- (14) Imparting employment oriented education to the youth. Computer training, T.V. and scooter repairing, sewing, toy making are few such fields where the village boys and girls will get employment.
- (15) Wherever possible the villagers should be encouraged to fight corruption in government departments. They should be taught which government schemes are in operation for them and they should try to reap the benefits.
- (16) Organizing self help groups and arranging micro financing through them.

The role of voluntary agencies in rural development is significant. It will lead to the upliftment of the needy, neglected and those who are in dire need. The guiding principle should be to ensure economic growth, equitable distribution of wealth and imparting social justice to all.

Saket
New Delhi

BE AN OPTIMIST

Say to yourself every morning:

- Today is going to be a great day!
- I can handle more than I think I can!
- Things don't get better by worrying about them!
- I can be satisfied if I try to do my best!
- There is always something to be happy about!
- I'm going to make someone happy today!
- I shall never feel dejected!
- Life is great so make most of it!

A Father's Letter to his Son's Teacher

Abraham Lincoln, the famous President of America wrote a letter to his son's teacher. This letter can become a formula for success in life for everybody. Here are some abstracts from the letter:

He will have to learn, I know
That all men are not just,
All men are not true.
But teach him also that
For every scoundrel there is a hero,
That for every selfish politician,
There is a dedicated leader...
Teach him that for every enemy
There is a friend

In school teach him
It is far more honorable to fail
Than to cheat...
Teach him to have faith in his own ideas,
Even if everyone tells him they are wrong.
Teach him to be gentle with gentle people,
And tough with the tough.
Try to give my son
The strength not to follow the crowd
When everyone is getting on to the band wagon.
Teach him to listen to all men...
But teach him also to filter all he hears
On a screen of truth,
And take only the good that comes through.
Teach him, if you can,
How to laugh when he is sad...

Treat him gently,
But do not cuddle him,
Because only the test of fire makes fine steel.
Let him have the courage to be
Impatient;
Let him have the patience to be brave.

Teach him always
To have sublime faith in himself,
Because then he will always have
Sublime faith in humankind.
This is a big order,
But see what you can do...
He is such a fine little fellow,
My son.

I Have Three Visions For India

Dr. A. P. J. AbdulKalam

In 3000 years of our history, people from all over the world have come and invaded us, captured our lands, conquered our minds. From Alexander onwards, the Greeks, the Turks, the Mughals the Portuguese, the British, the French, the Dutch, all of them came and looted us and took over what was ours. Yet we have not done this to any other nation. We have not conquered anyone.

We have not grabbed their land, their culture, their history and tried to enforce our way of life on them. Why? Because we respect the freedom of others. That is why **my first vision is that of FREEDOM**. I believe that India got its first vision of this in 1857, when we started the War of Independence. It is this freedom that we must protect and nurture and build on. If we are not free, no one will respect us.

My second vision for India is Development. For Sixty years we have been a developing a nation. It is time we see ourselves as a developed nation. We are among the top 5 nations of the world in terms of GDP. We have 10 percent growth rate in most areas. Our poverty levels are falling. Our achievements are being globally recognized today. Yet we lack the self-confidence to see ourselves as a developed nation, self reliant and self-assured.

I have a third vision. India must stand up to the world. Because I believe that, unless India stands up to the world, no one will respect us. Only strength respects strength. We must be strong not only as a military power but also as an economic power. Both must go hand-in-hand.

The Writer is the Former

New low: US judges Jailed kids for Dollars

Teens Were Locked Up For Months for Stealing Loose Change from Cars or Writing a Prank Note

Wilkes-Barre (Pasadena): For years, the juvenile court system in Wilkes-Barre operated like a conveyor belt: Youngsters were brought before judges without a lawyer, given hearings that lasted only a minute or two, and then sent off to juvenile prison for months for minor offenses.

The explanation, prosecutors say, was the corruption on the bench. In one of the most shocking cases of courtroom graft on record, two Pennsylvania judges have been charged with taking millions of dollars in kickbacks to send teenagers to two privately run youth detention centers.

"I have never encountered, and I don't think that we will in our lifetimes, a case where literally thousands of kids' lives were just tossed aside in order for a couple of judges to make some money," said Marsha Levick, an attorney with the Philadelphia-based Juvenile Law Center, which is representing hundreds of youths sentenced in Wilkes-Barre.

Prosecutors say Luzerne County judges Mark Ciavarella and Michael Conahan took \$2.6 million in payoffs to put juvenile offenders in lockups run by PA Child Care LLC and Sister Company Western PA Child Care LLC. The judges were charged on January 26 and removed from the bench by the Pennsylvania Supreme Court.

No company officials have been charged, but the investigation is still going on. The High Court, meanwhile, is looking into whether hundreds or even thousands of sentences should be overturned, and the juveniles' records expunged.

Among the offenders were teenagers who were locked up for months for stealing loose change from cars, writing a prank note and possessing drug paraphernalia. Many had never been in trouble before. Some were imprisoned even after probation officers recommended against it. The judges are scheduled to plead guilty to fraud on Thursday in

federal court. Their plea agreements call for sentences of more than seven years behind bars.

The prison industry in the United States: big business or A new form of slavery?

Vicky Pelaez (Global Research)

Human rights organizations, as well as political and social ones, are condemning what they are called a new form of inhuman exploitation in the United States, where they say a prison population of up to 2 millions-mostly black and Hispanic-are working for various industries for a pittance. For the tycoons who have invested in the prison industry, it has been like finding a pot of gold. They don't have to worry about strikes, of paying unemployment insurance, vacations etc. All of their workers are full-time, and never arrive late or are absent because of family problems; moreover, if they don't like the pay of 25 cents an hour and refuse to work, they are locked up in isolation cells.

There are approximately 2 million inmates in states, federal and private prisons throughout the country. According to California Prison Focus, "no other society in human history has imprisoned so many of its own citizens. The figures show that the United States has locked up more people than any other country: a half million more than China, which has a population five times greater than the U.S. Statistics reveal that the United States holds 25% of the world's prison population, but only 5% of the world's people. From less than 300,000 inmates in 1972, the jail population grew to 2 million by the year 2000. In 1990 it was one million. Ten years ago there were only 5 private prisons in the country, with a population of 2,000 inmates; now, there are 100, with 62,000 inmates. It is expected that by the coming decade, the number will hit 3, 60,000, according to reports.

The private contracting of prisoners for work fosters incentives to lock up. Prisons depend on this income. Corporate stockholders who

make money off prisoners' work, lobby for longer sentences, in order to expand their workforce. "The system feeds itself," says a study by the Progressive Labor Party, which accuses the prison industry of being "an imitation of Nazi Germany with respect to forced slave labor and concentration camps."

According to the Left Business Observer, the federal reason industry produces 100% of all military helmets, ammunition belts, bullet-proof vests, ID tags, pants, shirts, tents, for canteens. Along with war supplies, prison workers supply 98% of the entire market for equipment assembly services; 93% of paints and paintbrushes; 92% of stove assembly; 46% of body armor; 36% of home appliances; 30% of headphones/microphones/speakers; and 21% of office furniture, airplane parts, medical supplies, and much more.

CRIME GOES DOWN, JAIL POPULATION GOES UP

According to reports by human rights organization, these are the factors that increase the profit potential for those who invest in the prison industry complex.

Jailing persons convicted of non-violent crimes and long prison sentences for possession of microscopic quantities of illegal drugs. Federal Law stipulates 5 years 'imprisonment without possibilities of parole for possession of 5 grams of crack or 3.5 ounces of heroine, and 10 years for possession of less than 2 ounces of rock-cocaine or crack. A sentence of 5 years for cocaine powder requires possession of 500 grams-100 times more than the quantity of rock-cocaine for the same sentence. Most of those who use cocaine powder are White, middle-class or rich people, while mostly Blacks and Latinos use rock cocaine. In Texas, a person may be sentenced for up to 2 years' imprisonment for possessing 4 ounces of marijuana. Here in New York, the 1973 Nelson Rockefeller anti-drug law provides for a mandatory prison sentence of 15 years to life for possession of 4 ounces of any illegal drug.

The passage in 13 states of the "three strikes" laws (life in prison after being convicted of three felonies), made it necessary to build 20 new federal prisons. One of the most disturbing cases resulting

from this measure was that of a prisoner who for stealing a car and two bicycles received three 25 years sentences.

THE FOLLOWING MEASURES HAVE BEEN ADOPTED TO INCREASE PRISON POPULATION

- Longer sentences.
- The passage of laws that require minimum sentencing, without regard for circumstances.
- A large expansion of work by prisoners creating profits that motivate incarceration of more people for longer periods of time.
- More punishment to prisoners, so as to lengthen there sentences.

HISTORY OF PRISON LABOUR IN THE UNITED STATES

Prison labor has its roots in slavery. After the 1861-1865 Civil War, a system of “hiring out prisoners” was introduced in order to continue the slavery tradition. Freed slaves were charged with not carrying out their sharecropping commitments (cultivating someone else’s land in exchange for part of the harvest), of petty thievery-which were almost never proven-and were then “hired out” for cotton picking, working in mines and building railroads. From 1870 until 1910 in the states of Georgia, 88% of hired-out convicts were Black. In Alabama, 93% of “hired-out” miners were black.

PRIVATE PRISONS

The prison privatization boom began in the 1980s, under the governments of Ronald Reagan and Bush Sr., but reached its height in 1990, when Wall Street stocks were selling like hotcakes. U. S. Government’s program for cutting the federal workforce resulted in the Justice Department contracting of private prison corporations for the incarceration of undocumented workers and high security inmates.

Private prisons are the biggest business in the prison industry complex. About 18 corporations guard 10,000 prisoners in 27 states. The two largest are Correctional Corporation of America (CCA) and Wackenhut, which together control 75% private prisons. These private

prisons receive a guaranteed amount of money for each prisoner, independent of what it costs to maintain each one.

Learn from the mistakes of others, you can't make all yourself.

Corruption in Drug Industry

A World wide Phenomenon

A war that is rarely mentioned in the history books is raging in many countries of the World. It is killing more than a crore people each year. It is an economic war, a war to control the health system of the people. This war is being waged by the pharmaceutical industry. Today, the industry is blamed for causing injury and death of millions of people through the so-called 'business with disease'. The industry has been accused of war crimes before the International Criminal Court, in the Hague.

Specially the American pharmaceutical industry has been accused of building itself in a particular way and its primary goal is to control the health care system around the World. It is systematically replacing natural, non-patentable therapies with profitable, synthetic drugs and patentable therapies that could be sold to patients at sky-high prices.

In American media – newspapers and T.V. – it is hard to tell between pharmaceutical advertisements and car advertisements. Both use the same popular music, good acting and lofty promises – to hook customers. India is gradually falling prey to the trick and media is full of such advertisements. Tooth pastes, slimming products, arthritis curing drugs are freely advertised. Very often they prove not only ineffective but at times harmful also. In America in the year 2000, pharmaceutical companies spent 2.5 billion dollars on advertisements which increased to 300 million dollars in 2003.

Another method adopted by the drug companies to increase the sale of their products is to influence the decisions of the doctors about prescribing the medicines for their patients. In U.S., India and other countries tens of thousands of medical representatives' descend on the doctors' offices every day. Patients in doctors' waiting rooms are often outnumbered by medical representatives. They provide literature to the doctors which carefully includes the information the drug companies choose and omit what they want they want to avoid. The studies with favorable results are published and those with less favorable are not included. The medical representatives offer stacks of sample and gifts to the doctors. It has been observed that the sale of a particular medicine

increases after a hard selling campaign is undertaken by the drug company.

In Poland pharmaceutical firms contact doctors directly and offer them extra pay during their official government paid working time. In such cases doctors have to prescribe, or even give free, medicines produced by the pharmaceutical companies and then observe patients and prepare reports for the firms. The firms organize 'seminars' in very attractive tourist places for atleast a week. The professional presentations and discussions take only one day and rest of the time is spent in 'social activities'. The firms cover all the expenses.

In Italy the police uncovered a huge nexus between the British pharmaceutical giant Glaxo Smites Kline (GSK) and doctors. It investigated 2900 doctors. An elaborate computer system was set up which showed how GSK commercial representatives tracked the prescription made by doctors in their pay. 13000 hours of phone tapes gave a clear picture of relationship between prescription issued and the value of presents received by the doctors. The gifts included "medical tours" to cultural retreats, cameras, stereo systems, computers and plain cash.

The Indian doctors are not far behind their western counterparts in this respect. According to a report published in the Times of India doctors are given platinum and gold coupons if they prescribe particular drugs to a fixed number of patients. The more coupons they get the greater are the chances of winning prizes. The prizes include cars, frost free refrigerations, T.V. sets, digital cameras and other items.

Contests are held at some places and in one such contest 100 doctors who topped the prescribers' charts from cities like Ahmedabad, Chennai, Alwar, Belgaum, Ambala and Agra participated in a lucky draw and were awarded publicly by a Gujarat pharmaceutical firm.

The same company let some other doctors and their families sample Turkish cuisine and culture in Istanbul as part of an International symposium on metabolic medicine. Another lot from 12 metros splashed around in the best water parks in their cities courtesy the same company.

According to the same report a pharma representative told the TOI that his firm has earmarked an annual budget of Rs. 2 crores for freebies for doctors in Delhi alone. This does not include gifts and trips abroad, which come from the company's central funds.

Remedy - But what is the remedy to cure this malady? No law enacted by the legislature and no law enforcement agency can eradicate the evil completely if the medical community itself does not cooperate. There are some suggestions which can go a long way in eliminating the malpractices adopted by the pharmaceutical firms.

- There should be strong, mandatory tools banning any gifts or payments for meals, shoes, sporting events, travel or meetings.
- A system should be evolved in which drug samples are replaced by vouchers for low-income patients. to page 83

RATIONAL USE OF DRUGS

Col (Dr.) B.R. Pareethi

Human body is so perfectly constituted that no medicine is needed if one obeys the fixed laws of nature. Nature provides medicine in abundance in fruits, raw vegetables, herbs and spices etc.

Paracelsus, a 16th century physician, said that all medicines are poisons and have side effects. The meaning of 'Rational' is reasonable and sensible. The 'Drug or Medicine' can be defined as a chemical or biological substance that is used to treat, prevent or diagnose an ailment. Irrational use of medicine may not prove effective for the ailment, it may be a health hazard and an economic loss.

The Controller General of Drugs – India has recommended 350 essential drugs along with few life saving medicines. Today the market is flooded with over 70,000 formulations of expensive branded medicines. Although Drug Standard Control Organization is a 'watch dog' for bad medicines but irrationalities in drug treatment is still being caused by health professionals.

Right to information Act 2005

Every patient has the right to know:

- (i) What ailment is he suffering from?
- (ii) Is there any cheaper or alternative drug available?
- (iii) What restriction with regard to eatables/drinks with medicines is to be taken?
- (iv) What is the prognosis and after how many days will he be fit to move?
- (v) Any information or advice for life saving measures in cases of emergency e.g. head injury, brain/heart attack.

Interaction of Drugs

Interaction is said to occur when the effect of one drug is changed by the presence of another drug, food or chemical agent.

- (a) Interaction between Drug and Drug: When medicines fight against each other e.g. High blood pressure drugs are not effective if taken with brufen.
- (b) Interaction between Drug and Alcohol/Food items i.g. (i) Flagyl (anti diarrhoeal) drug taken with whisky can cause severe reaction. (ii) All antibiotics react with milk.
- (c) Other Drug Reactions:
 - (i) Over dose of oxygen as life saving medicine can be suicidal for infants, if it is more than 84%.
 - (ii) Anabolic Steroids used for muscle building at a gymnasium for a long duration can lead to heart enlargement (cow's heart), heart attack or even a heart failure.
 - (iii) D. Kiran Deep Kaur warned that multi-vitamin supplements prescribed as 'miracle drugs' can produce drug reaction.
 - (iv) Cox-2 (Rofecox) a pain killer had caused drug disaster in 1999 resulting in death of several patients.
 - (v) Paracetamol in large doses amongst infants can be detrimental.

Non-Compliance

When the consumer does not adhere to the instructions given in the prescription is called Non-Compliance. It may be due to disbelief in the doctor and due to distorted drug culture.

What else?

- Standard Quality Drug was explained as with 100% essential salt available in the pill. If it is less or mixed with other substances it will be called a Spurious Drug (punishable with death).
- Counterfeit Drugs are those when the manufacturers imitates the label and packages in an identical manner to cheat the consumers.
- Adulterated Drugs, when some toxic or purified substances are combined with the main salt of the drug with the intention to cause physical injury. This is punishable under the Drug Act, 1940 and Drug Rules 1945.

Medication Errors could be summed up by supply of:

- (i) wrong drug
- (ii) wrong dose
- (iii) for wrong duration
- (iv) for wrong mode of administration
- (v) for wrong patient

Medicine and commercial interests makes an unhealthy combination. This paper is aimed at Rational Use of Drugs by discarding more aggressive branded expensive medicines especially alluring the healthy

population like (i) Food supplements (ii) Sex tonics- Viagra (iii) Hormone Replacement Therapy (iv) Alprax tablets for reducing tension etc. Father Britto Joseph says human body fights diseases in its own way, at its own pace and does not need any medicine. Naam Therapy-Sarb Rog ko – Aukhad Naam , is better than any other therapy.

The Path of the Pilgrim

Dr. Kiran Kumar

Have you ever felt a burning desire rise up within you to travel to a particular place, a place that holds some special meaning for you? Perhaps it might be to a house or neighborhood where you lived as a child, you have a certain task that must be accomplished, to seek a cure for an illness of body or mind, or to scatter the ashes of the loved one. Your journey might be a passionate spiritual search, looking for answers to the great existential questions of life. It may be a journey of celebration and affirmation, taken at a time in life when a great event has occurred, perhaps marriage or birth of a baby. All of these special journeys are pilgrimages, transformative journeys of the spirit.

Pilgrimages have been called the oldest form of self-remembering and re-discovery. The pilgrim is often called to the journey by an inner yearning that taps into some wellspring of meaning for that person. Think again about your own life. What is it that you hold sacred? Is it a quest for God? Is it music, nature, family heritage? Perhaps it is certain in the world, a particular geography that has resonance with you. Whatever it may be, a pilgrimage that attends to what is sacred in your life can be an extraordinary experience. Having said that, such a journey doesn't necessarily require us to travel to remote corners of the globe or endure weeks of hardship. Even the most ordinary trip can be transformed by mobilizing the power of imagination and by learning to be attentive to the mysterious nature of the journey.

In my exploration of the path of the pilgrim, I want to recount some wonderful tales of these journeys. One of the most incredible pilgrims of all time was Ibn Battua who left his home in Morocco in the year 1325. For 29 years he made pilgrimages in Europe, in Middle East, and all the way to China, roaming 75,000 miles. He was possessed of a great longing to learn about other lands and peoples and to record his explorations in a spiritually inspired way. When he finally returned to

Morocco, he wrote a book about his travels that remains one of the most extraordinary documents about a journey ever written.

Pilgrims are spiritual practices in many cultures, and reading about the incredible diversity of these journeys is fascinating. India is a country rich in pilgrimage routes. The famous pilgrimage of India is without doubt the extraordinary festival called Kumbh Mela, the largest spiritual gathering on earth. People come to one of four sacred sites along the course of the Ganges, the location rotating between sites every four years. The pilgrims speak different languages, observe different customs, wear different types of clothing, but they meet to immerse themselves in the sacred water of the Ganges river, the mother goddess Ganga. By bathing in the river, pilgrims believe that a great spiritual energy is granted and besides personal purification, the act of bathing contributes to the evolution of collective spiritual consciousness.

How do we prepare ourselves for a pilgrimage? First of all, the preparation involves an act of the imagination. What is it that calls us? How can we respond to that call in a journey that does justice to the call? For many people a search for one's ancestral roots is a pilgrimage of great meaning. Others make pilgrimages to fulfill a vow.

Perhaps you have decided that you want to travel to the place where your ancestors came from, in a remote part of the country. To prepare yourself, you might begin by studying letters, documents and photos of ancestors, absorbing images of the geography of the area, reading about the country's history. Once you have decided how long you have to travel, you can choose the way you will go. Let the journey be a mindful one...travel at least a part of the way on foot if possible. Travel becomes sacred by the depth of contemplation involved in the journey.

As you live on your pilgrimage, a small ritual of leave-taking can mark the beginning of your sacred journey. You might want to offer a prayer, light a candle, or gather some friends to wish you well.

Who will accompany you on your journey? Choose your companions carefully, since on a pilgrimage, companions are important. If you are traveling on a route where you'll encounter other pilgrims, you may experience a sense of communication—a deep connection with those kindred spirits who are also committing themselves to the journey.

As you travel, remember the attitude of the true pilgrim – be open, aware, humble, and mindful. Buddhist pilgrims follow what they call “the 5 excellent practices of pilgrimage.” They are:

- practice the art of attention and listening.
- practice renewing yourself everyday.
- practice meandering towards the centre of every place.

- practice the ritual of reading sacred texts.
- practice gratitude and praise singing.

Travel as lightly as possible...rid yourself of material burdens so that your steps will be easier. You may want to take with you a few special items-a walking stick, a hand woven bag, a book or journal... Once you've begun your journey, be aware of the possibilities for mystery and meaning. Phil Cousineau writes: "The pilgrim is a poetic traveler, one who believes that there is poetry on the road, at the heart of everything. Soulful travel is the art of finding beauty even in ruins, even in inclement weather, even in foul moods. Like art, pilgrimage cannot wait for the right mood to appear. Like poetry, pilgrimage is beyond time and space...."

Expect difficulties and challenges-the most meaningful pilgrimages are those that present tough challenges to the pilgrims. Be ready for the unexpected! Observe the way your heart draws you forward and feel confident that you will find your way....the poet Rumi assures us: "As you start on the way, the way appears." Listen intently to every thing around you...what are you listening for right now in your life? Become aware of the importance of seeing, listening, of recording. In sacred travel, every experience is uncanny, no encounter is without meaning, look for signs everywhere, see behind the veil of things by using the powers of your sacred imagination. In her book, "A Trail through Leaves", Hannah Hinchman encourages us to record experiences of the sacred in everyday life. Through this act of recording, we receive an antidote to the terror of lost time – we do things that alter time.

Remember that true pilgrimage changes lives...whether you are embarking on a grueling walking pilgrimage, setting off on a long delayed journey to your ancestral roots or taking step on a journey of creativity, you will be changed.

*The writer is a Co-Director
in Mac Master Medical College Hamilton-Ontario, Canada*

.... from page 78

- The drug companies should be banned from underwriting doctors' continuing education thereby ending drug company influence on the speakers in seminars and meetings.
- The Indian Medical Association should devise a Hippocratic type of oath by which the doctors would commit themselves to use rational drugs, referral and evidence based intervention.
- They will also refuse pharmaceutical companies gifts and other incentives.

It is only when India's health professionals decide that enough is enough and recognizes that their calling included stamping out this major cause of death and disease that the health status of India's people will begin to improve significantly.

{Compiled from information available on internet with inputs from the Times of India}

पत्र जगत

ज्ञान प्रभा के पिछले दो अंक पढ़कर अत्यंत हर्ष हुआ। लेख ज्ञानवर्धक एवं सूचनाओं से परिपूर्ण हैं। अमेरिकी एवं प्राइम संकट में अद्भुत जानकारी दी गई है। धन की अत्याधिक प्रचुरता कितनी घातक हो सकती है यह अमरीकी दुर्दशा से स्पष्ट है। सेवा की विरासत में बाबा आमटे तथा उनके दोनों पुत्रों ने जो मिसाल पेश की है वह अनुकरणीय है।

अंक 12 में स्व0 डा0 लक्ष्मीमल सिंधवी पर लिखा गया लेख अत्यन्त सुन्दर है पहली बार सिंधवी के विषय में अलग प्रकार की जानकारी मिल सकी है।

कृपया इन प्रयासों को जारी रखें और ऐसी ही जानकारियां उपलब्ध कराते रहें।

कैलाश नाथ नैमानी

कानपुर

प्रिय सम्पादक जी,

ज्ञान प्रभा का 12वां अंक देखने का अवसर प्राप्त हुआ। भारत विकास परिषद् ऐसी सुन्दर पत्रिका प्रकाशित करने के लिए बधाई का पात्र है। आतंकवाद पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में ढेरों लेख छप चुके हैं किन्तु इस पत्रिका में दी गई जानकारी अनूठी एवं मौलिक है। कैसा भी बड़ा लेखक या कलाकार हो सांसारिक एवं पारिवारिक झंझटों से उसे भी मुक्ति नहीं मिलती। 'दिनकर का दर्द' इस तथ्य को उजागर करता है। एक भारतीय शिक्षिका का अमेरिका के स्कूल का अनुभव वहाँ की शिक्षा पद्धति की विद्रूपता की सच्ची तस्वीर पेश करता है।

- रामाश्रय प्रसाद, पटना

A Loving Teacher

Sir,

Sometime ago, I visited a primary school in a small town. There were about 300 students in all. The principal, who was in his late fifties, was at that time moving around the school corridor and it was recess time. Small boys came running to him and hugged him! I was surprised

to see this scene! how can such small kids behave in such a way? I wondered why they were not scared of their school principal. Soon I got the answer that this principal loved the children so much that he spent most of his time with his students and that they treated him like their grandpa. When it came to discipline, his one, "No" would be enough to bring calm. He never had to shout.

How I admired this principal. If we have more such persons I am sure all children would love to be in school. This is in great contrast to the teachers who thrash their pupils for small mistakes and a few of the children even die.

Ashok Kumar, Delhi



सदस्यता फ़ार्म

GYAN PRABHA
(Quarterly)

ज्ञान
प्रभा

मैं ज्ञान प्रभा का ग्राहक बनना चाहता हूँ :

एक वर्ष (One Year) रु. 100/-

दो वर्ष (Two Years) रु. 200/-

आजीवन सदस्य (Life Member) रु. 1500/-

स्पष्ट शब्दों में लिखें

नाम

(Name)

पता

(Address)

नगर पिन कोड राज्य.....

(Town)

(Pin)

(State)

टेलीफ़ोन नं..... मोबाईल.....

(Ph. No.)

(Mob.)

तिथि हस्ताक्षर.....

(Date)

(Signature)

चैक नं./ड्राफ्ट/सं.....दिनांक.....रु.....का संलग्न है

(Cheque/D.D. No.)

(Date)

(Amount)

(Enclosed)

(ड्राफ्ट/चैक भारत विकास परिषद् दिल्ली को देय होगा)

(Payable to BVP at Delhi)

(भुगतान के साथ इस कूपन को भी भेजें)

भारत विकास परिषद्

भारत विकास भवन (पावन हाउस के पीछे), पीतमपुरा, दिल्ली-110034

फोन नं.: 011-27313051, 27316049

Bharat Vikas Parishad (Behind Power House) Pitampura, Delhi - 34